

कृष्ण सूर्य सम, माया है अंधकार। जहाँ कृष्ण वहाँ नहीं माया का अधिकार ॥

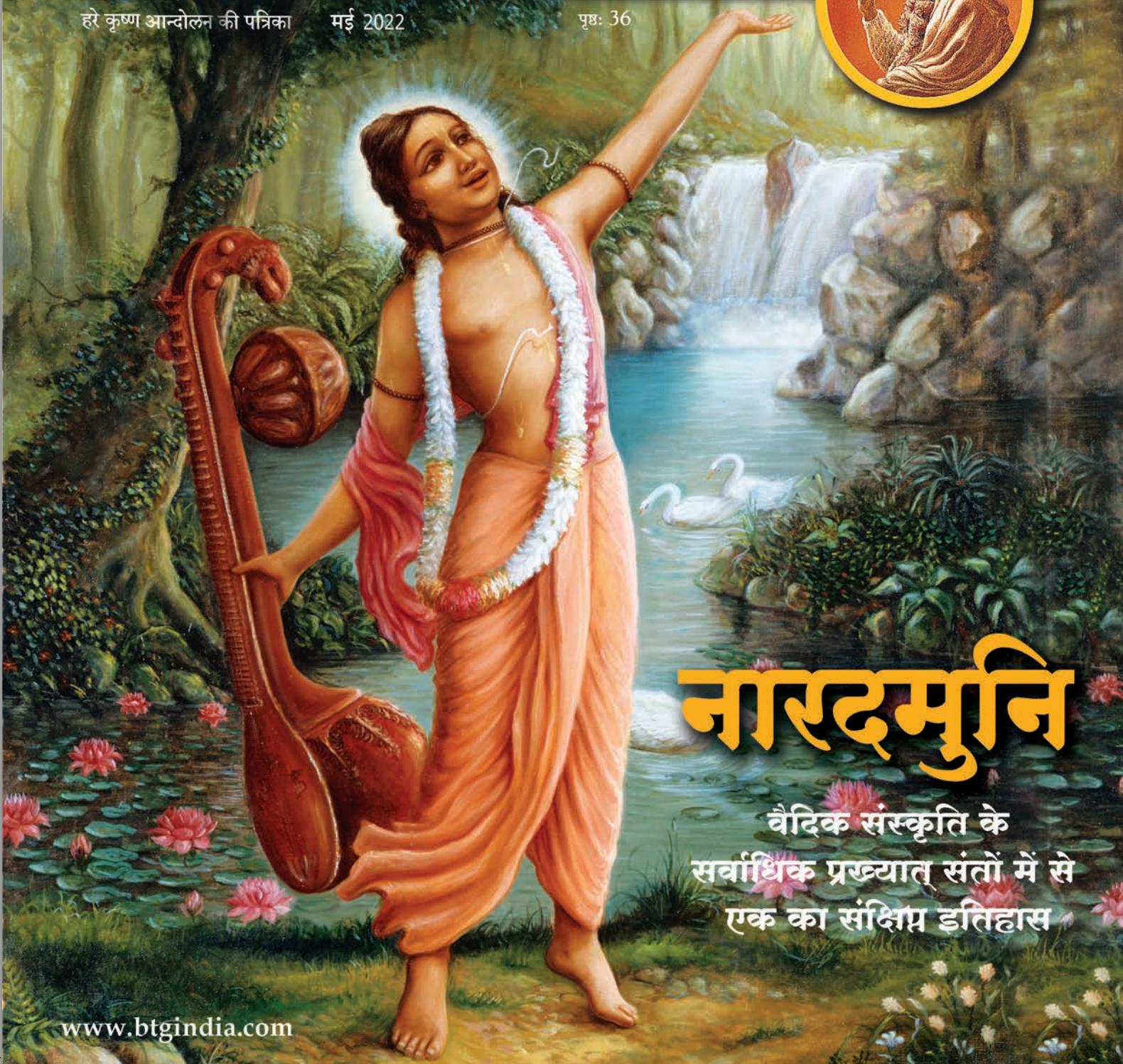
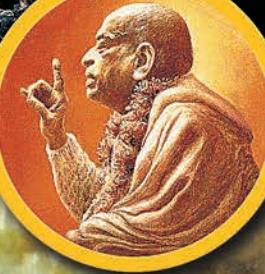
₹ 30

# भगवद् गीता

हरे कृष्ण आन्दोलन की पत्रिका

मई 2022

पृष्ठ: 36



## नारदमुनि

वैदिक संस्कृति के  
सर्वाधिक प्रख्यात संतों में से  
एक का संक्षिप्त इतिहास

इस्कॉन जयपुर के संरक्षक, ओकेप्लस समूह के चेयरमैन एवं  
कृष्ण भावनामृत सेन्टर [KBC] के संस्थापक एवं अध्यक्ष  
**श्री ओमप्रकाश जी मोदी** द्वारा मानसरोवर जयपुर स्थित  
इस्कॉन मंदिर की समस्त भूमि ( 15000 वर्गगज ) भेंट की गई है ।  
[M] 98290 57901

रेंडर रजिस्ट्रेशन नं. : RAJ/P/2019/885  
www.rera.rajasthan.gov.in



॥ आनंदम भवः ॥

**Okay PLUS®**  
BUILDERS & DEVELOPERS  
जयपुर का प्रभु  
**JIP**  
JAYAPUR INNOVATIVE PROJECTS

## सीकर रोड पर लठज़री अपार्टमेंट

मात्र ₹ 24\* <sup>2 बीचके</sup> लाख  
मात्र ₹ 30\* <sup>3 बीचके</sup> लाख

बुकिंग मात्र 10% में

\*T&C Apply.

8740 033 033

**Anandam**  
2&3 BHK PREMIUM HOMES  
मेन 300 फीट सीकर रोड, जयपुर

2 एवं 3 बीचके  
प्रीमियम अपार्टमेंट्स



आधुनिक  
वलब  
हाउस

Corporate Office: OKAY PLUS HOUSING PVT. LTD.,  
72 A, Kiran Path, Suraj Nagar (W), Civil Lines, Jaipur

HOME LOAN APPROVED BY **SBI**

Visit us at:  
[Facebook](#) [YouTube](#)

Member of  
**CREDIT RASHTRASAN**

Disclaimer : Images shown above are representational, informative and are only indicative of the envisaged developments and the same are subject to change in actual. All intending purchaser/s are bound to inspect the plans and approvals and visit the project site and apprise themselves of all plans and approvals and other relevant information obtained from time to time from respective authority. The promoter holds no responsibility for its accuracy and shall not be liable to any intending purchaser or any one for the changes/ alterations/ improvements so made.

Jaipur | Ajmer | Kishangarh | Beawar | Bhilwara | Dausa • Residential • Commercial • Township • Hotels • Farm House

T&C Apply. \*Offer valid for Limited Period Only.

# 40 से अधिक प्रोजेक्ट्स के साथ हजारों संतुष्ट ग्राहक



**भगवद्दर्शन**  
(Bhagwat Darshan)

श्रील प्रभुपाद जी की प्रसन्नता हेतु सम्पूर्ण भारत में  
अपने छेत्र में 'भगवद्दर्शन' एवं 'BACK TO GODHEAD' पत्रिका को  
वितरण करने हेतु उत्साही एवं इच्छुक भक्त संपर्क करें।

Call / SMS / Whatsapp to:  
**Mayapur pati das**  
@ 09899944652 (New Delhi)  
Mail: btg.mgz@gmail.com

## विषय-सूची

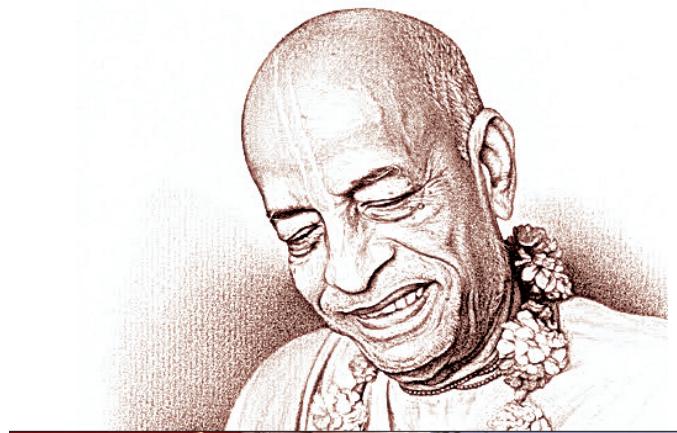
इन्द्रियतमि पशुवत् है	7
क्या लोग मूलतः अच्छे होते हैं या बुरे?	11
डिग्री आवश्यक है, किन्तु केवल कुछ 'डिग्री' तक ही	16
प्रह्लाद महाराज के दिव्य गुण	21
नारदमुनि	24

पाठकों के पत्र	4
प्रार्थना के क्षण	18
ज्ञानबिन्दु	27
संकीर्तन कथाएँ	28
श्रील प्रभुपाद की वाणी	29
श्रीभगवान् ने कहा	31
दिनदर्शिका	33
सम्पादकीय	34

प्रिय पाठक,

रस एवं यूकेन के बीच चल रहे युद्ध एवं महामारी के कारण भगवद्गीता पत्रिका के लिए प्रयुक्त होने वाले ए.ल.डब्ल्यू.सी. इम्पोर्टिंग प्रिंटिंग कागज का अभाव हो रहा है। अगले कुछ महीने जब तक स्थिति में सुधार नहीं होता, तब तक हम भारत में उपलब्ध कागज से ही प्रिंटिंग करेंगे। कृपया सहयोग करें।

आभार  
प्रकाशक



'भगवद्गीता' अखिल मानवता को आध्यात्मिकत करने का सांस्कृतिक साधन है। इसके द्येय इस प्रकार से हैं:

1. सत्य और भ्रम, जड़ और चेतन, नित्य और अनित्य का भेद लोगों को समझाना।
2. भौतिकतावाद के दोष लोगों को बताना।
3. वैदिक संस्कृति के अनुसार
4. आध्यात्मिक जीवन का प्रशिक्षण देना।
5. वैदिक संस्कृति की रक्षा और प्रचार करना।
6. भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के उपदेश के अनुसार भगवान् के दिव्य नाम का संकीर्तन करना।
7. पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण करने और उनकी सेवा करने के लिए सारे जीवों की नम्र भाव से मद्दद करना।

## पाठकों के पत्र

भगवद्वर्णन हरे कृष्ण आनंदोलन की अंग्रेजी पत्रिका (Back to Godhead) का अधिकृत हिन्दी संस्करण है, जिसकी शुरुआत श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद ने सन् 1944 में अपने गुरु श्री श्रीमद् भक्तिसिद्धांत सरस्वती महाराज की आज्ञानुसार की थी।

**सदस्यता - मासिक भगवद्वर्णन सदस्यता शुल्क (कुरियर द्वारा) - एक वर्ष - 600 रु., दो वर्ष - 1200 रु., पाँच वर्ष - 2800 रु. (भारतीय डाक द्वारा) - एक वर्ष 300 रु., दो वर्ष - 600 रु., पाँच वर्ष - 1400 रु.**

'भगवद्वर्णन' पत्रिका साल में बाहर बार प्रकाशित की जाती है। मीटीआर्डर 'भगवद्वर्णन' के नाम से ऐंजेन जाए। आरम्भ में ऐंजेन समय या संपादक के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना पूरा नाम और पता पिनकोड के साथ स्पष्ट अक्षरों में लिखें। यदि पते में परिवर्तन हो तो तुरंत सूचना दें। चेक से रकम ऐंजेन हो तो मुंबई के बाहर के चेक के लिये 10 रु. अधिक भैंजें। चेक 'भगवद्वर्णन' के नाम से भैंजें।

आप किसी भी महीने में सदस्य बन सकते हैं। अपनी धनराशि निम्नलिखित पते पर भैंजें - 'भगवद्वर्णन', 302, अमृत इंडस्ट्रियल एस्टेट, 3री मंजिल, पश्चिम एक्सप्रेस हाइवे मीरा रोड (पूर्व), 401104 दूरभाषः - 9372631254, 9372635665(whatsapp) btg@indiatbtg.com

बी.बी.टी. के समन्वयक एवं ट्रस्टी : श्रीमद् गोपालकृष्ण गोस्वामी महाराज, श्रीमद् जयद्वैत स्वामी महाराज • संपादक : श्यामानन्द द्वास • उपसंपादक : वंशी विहारी द्वास • व्यवस्थापक : सचिवानन्द द्वास, सुंदररूप द्वास • वितीय प्रबंधन : सहवेद द्वास (एस.पी.माहे खरी), मंजरी देवी द्वासी • प्रसार व्यवस्थापक : पाण्डुरंग द्वास

® 2022 भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, मुद्रित एवं प्रकाशित: उज्ज्वल जाजू द्वारा भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट। प्रकाशन स्थान: 33, जानकी कुटीर, जुहू, मुंबई-49; मुद्रण: SAP Print Solutions Pvt Ltd, 128, लक्मी इंडस्ट्रीयल इस्टेट, हवुमान गली, एस.एन.पथ, लोअर परेल (प.) मुंबई 400013, भारत

**संपादकीय कार्यालय :** 'भगवद्वर्णन', 302, अमृत इंडस्ट्रियल एस्टेट, 3री मंजिल, पश्चिम एक्सप्रेस हाइवे मीरा रोड (पूर्व), 401104 दूरभाषः - 9372635665, 9372631254 btg@indiatbtg.com

### दृढ़ता

हम शास्त्रों को जीवन में लागू करने की दृढ़ता कैसे प्राप्त कर सकते हैं?

-रविकान्त, इंटरनेट द्वारा

**हमारा उत्तर -** आध्यात्मिक ज्ञान के सीखने की प्रक्रिया क्रमिक होती है। अतः हम यह आशा नहीं कर सकते कि शास्त्रों का अध्ययन करने के पश्चात अगले दिन से ही हमारे व्यवहार में आध्यात्मिक प्रगति दिखाई देने लगेगी। यह समझना आवश्यक है कि शास्त्रों को सीखने पर आध्यात्मिक प्रगति तुरन्त नहीं होती अपितु धीरे-धीरे होती है। जब हम शास्त्रों का अध्ययन करते हैं, हरे कृष्ण महामंत्र का जप करते हैं, नियमित रूप से भक्तों का संग करते हैं, तब जीवन के प्रति हमारी आंतरिक अवधारणा में परिवर्तन आने लगता है और जैसे-जैसे यह अवधारणा बदलती है, वैसे-वैसे क्रमशः हमारे बाहरी चयन में भी परिवर्तन आने लगता है।

एक स्तर पर हम सोच समझकर, पूरी निष्ठा के साथ अपना प्रयास करते हैं कि शास्त्रों के अनुरूप ही अपना जीवन यापन करें। जब इन्द्रिय विषय हमें लुभाते हैं और तंग करते हैं, तो हम श्रीकृष्ण का स्मरण करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु हमारी रक्षा करें। कहने का भाव यह है कि हम एक सोचा समझा प्रयास करते हैं कि इंद्रिय विषयों के प्रतोभनों से बचें। ऐसा करने के लिए हमें प्रयत्नशील रहना भी चाहिए। किन्तु कभी हम अपने प्रयास में सफल होते हैं तो कभी नहीं भी होते।

लेकिन दूसरे स्तर पर जब हम शास्त्रों का नियमित अध्ययन करते हैं तो हमारी मूलभूत धारणायें बदलने लगती हैं। जैसे-जैसे हमारी धारणायें बदलती हैं, हम अधिकाधिक यह अनुभूति करने लगते हैं कि हम एक आध्यात्मिक जीव हैं और हमारे अन्तःकरण में यह विश्वास दृढ़ होने लगता है कि सच्चा आनन्द तो श्रीकृष्ण से सम्बन्ध स्थापित करने में है। अंततः, जब यह बदलाव अवचेतन स्तर पर होने लगता है, तब हम जो चयन करते हैं वे पहले से बेहतर होने लगते हैं। अतः हमें निरन्तर अपनी तरफ से पूरा

प्रयास करना चाहिए कि सही निर्णय करें और निराश न हों। किन्तु साथ ही साथ, हम अपनी भक्ति पर भी ध्यान देते रहें जो मूलभूत अवचेतन स्तर पर हमें शुद्ध करती रहती है।

यह ठीक वैसे ही है जैसे एक माँ चाहती है कि उसका बच्चा अच्छे से पढ़े-लिखे, किन्तु बच्चे का मन बाहर जाकर खेलने में अधिक लगता है। बच्चा प्रतिदिन खेलने के लिए बाहर जाता है और उसकी माँ उसे बार-बार पढ़ने के लिए बुलाती रहती है। माँ प्रतिदिन ऐसा करती रहती है लेकिन साथ-ही-साथ बच्चा प्राकृतिक प्रक्रिया से बड़ा भी तो हो रहा है। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता जाता है उसकी बुद्धि भी विकसित होती जाती है और जिस माँ को अपने पाँच साल के बच्चे को पढ़ने के लिए बार-बार कहना पड़ता था, अब उसे अपने पच्चीस साल के पोस्ट ग्रेजुएट बेटे को पढ़ने के लिए कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। ऐसा इसलिए क्योंकि अब बच्चे की बुद्धि विकसित हो गई है और वह अध्ययन के महत्व को समझने लगा है, और यह सब स्वाभाविक रूप से धीरे-धीरे समय के साथ सम्भव होता है।

इसी प्रकार एक स्तर पर हमें अपनी बुद्धि का उपयोग बच्चे के समान मन को एकाग्र करने में करना होता है। यदि यह गलत दिशा में जाता है, तब हमें इसे वापस लाना होता है। लेकिन जब हम भक्ति का अभ्यास करते रहते हैं, तब हम आध्यात्मिकता में बड़े होते जाते हैं। जैसे-जैसे हम बड़े होते हैं और हमारी समझ गहरी होती जाती है तथा हमारी धारणाएँ विकसित होती जाती हैं, वैसे-वैसे सही निर्णय करना हमारे लिए अधिकाधिक स्वाभाविक होता जाता है। अतः ऐसा दो स्तर पर होता है - (क) अपनी इच्छा शक्ति का प्रयोग कर सही निर्णय करने का प्रयास करते रहने से और (ख) भक्ति के निरंतर अभ्यास से, जिससे सही निर्णय करना हमारे स्वभाव का अंग बन जाता है। इस प्रकार हम अपने जीवन को शास्त्रों के अनुरूप ढाल सकते हैं।

## आध्यात्मिक जगत्

इस संसार में हम जिन वस्तुओं से प्रेम करते हैं, जैसे कला अथवा अन्य कोई विषय, क्या श्रीकृष्ण के धाम में भी उनका स्थान है? अथवा वहाँ वे नष्ट हो जाती हैं। वहाँ क्या गतिविधियाँ होती हैं? क्या वहाँ बच्चों के लालन-पालन का सुख भी होता है?

-तबिथा, ई.मेल द्वारा

**हमारा उत्तर** - वैदिक शास्त्रों में दो मेंढकों की एक कथा आती है। उनमें से एक विद्वान् था जिसने पूरी दुनिया का भ्रमण किया था, और दूसरा केवल गाँव के कुएँ में रहता था। एक दिन यह विद्वान् अपने दोस्त से मिलने उसके कुएँ में गया और समुद्र का वर्णन करने लगा। परन्तु कुएँ वाले मेंढक ने पूछा, “क्या वह मेरे कुएँ से दुगना है? या तिगुना है?” अपने कुएँ की समुद्र से तुलना करते समय वह हर बार अपने पेट को थोड़ा फुला लेता। अनन्तः उसका पेट फट गया। मेंढक के लिए अपने कुएँ के तुच्छ अनुभव के आधार पर समुद्र को समझ पाना असम्भव है।

आध्यात्मिक जगत् को समझना कुछ-कुछ ऐसा ही है। हम इस भौतिक कुएँ में रह रहे हैं। लोग यहाँ बूढ़े होकर मर जाते हैं और जीते-जी व्यर्थ ही लड़ते रहते हैं। भौतिक वस्तुओं का क्षय होता है - चाहे कार हो, कपड़े हों, इमारतें हों अथवा शहर। महाराई बढ़ती जा रही है और जीने के लिए हमारा संघर्ष भी। परन्तु यहाँ ऐसी एक भी वस्तु नहीं है जो हमें सदा-सदा के लिए सुखी कर सके। हमें कला, बच्चों आदि में थोड़ा सुख मिलता है और हम उससे अभिभूत होकर विचार करने लगते हैं कि क्या “इतना बड़ा” सुख भगवान् के धाम में मिलेगा? अथवा हम दिनभर वहाँ केवल भगवान् को घूरते बैठेंगे?

वास्तव में आध्यात्मिक जगत् विविधताओं से भरा है। श्रीकृष्ण के मित्र हैं, पत्नियाँ हैं, बच्चे हैं और प्रेमिकायें भी हैं। वे अपने माता-पिता तथा मित्रों के साथ दिनभर प्रेमभरे आदान-प्रदान में व्यस्त रहते हैं। वे खेलते हैं, गायें चराते हैं, खेतों में दौड़ते हैं और अपने मित्रों के साथ खेल-कूदने के बाद उनके साथ बैठकर भोजन करते हैं। आध्यात्मिक जगत् में प्रत्येक व्यक्ति आनन्द में रहता है। श्रीकृष्ण प्रत्येक वस्तु के केन्द्र हैं। वहाँ प्रत्येक व्यक्ति विशेष है, व्यष्टि है, और विविध वस्तुओं में विभिन्न प्रकार के सुख पाता है।

भौतिक जगत् में प्रत्येक वस्तु आध्यात्मिक जगत् की विकृत परछाई है और आध्यात्मिक जगत् में यहाँ से कहीं अधिक है। इसलिए चिन्ता की आवश्यकता नहीं है कि वहाँ “सबकुछ नष्ट हो जायेगा।” वास्तव में वहाँ आपको सबकुछ मिलेगा और वह भी सदा-सदा के लिए। वहाँ न मृत्यु है, न वृद्धावस्था और भगवान् श्रीकृष्ण का प्रत्येक आत्मा के साथ प्रेमभरा सम्बन्ध है।

## सोचना और कर्म

क्या हमें विचारों के भी कर्मफल मिलते हैं?

- अनादि जगन्नाथ दास, इंटरनेट द्वारा

**हमारा उत्तर** - कलियुग में पाप के बारे में सोचने से नहीं अपितु पाप करने से उनके फल मिलते हैं। परन्तु यदि हम उन विचारों पर बार-बार मनन करेंगे तो यह कुछ समय की बात ही होगी कि हम वह पाप कर बैठेंगे। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण वर्णन करते हैं कि मनुष्य जिन कार्यों का निरन्तर चिन्तन करता है, धीरे-धीरे वह उन कार्यों को करने के लिए प्रेरित होता जाता है। हमारे सूक्ष्म विचार हमारे स्थूल कार्यों में परिवर्तित होते रहते हैं। इसलिए व्यक्ति को चाहिए कि वह अपनी साधना, समुपदेश तथा सत्संग द्वारा कार्यों को मन के स्तर पर रोकने का प्रयास करे।

इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि हम अपने मन को गलत विचारों से हटाकर उन्हें पुनः श्रीकृष्ण और उनकी भक्ति में लगायें। गुरु के निर्देशन में साधना भक्ति करने का यह एक कारण है। जब हम नियमित जीवन यापन करते हैं तो हमारी जीवनशैली हमें एक-के-बाद-एक भक्तिमय कार्यों में संलग्न रखती है जिससे मन के पास गलत विचारों पर मनन करने का समय नहीं बचता। इसलिए कहावत है कि खाली मन शैतान का घर होता है।

(पाठक अपने पत्र hindibtg@gmail.com पर भेज सकते हैं)

श्रील प्रभुपाद के 125 आविर्भाव के उपलक्ष्य में हम भगवद्दर्शन पत्रिका के डिजिटल संस्करण का लोकार्पण कर रहे हैं।

## भगवद्दर्शन का डिजिटल संस्करण

हरे कृष्ण आन्दोलन की पत्रिका

अनुत्त: भगवद्दर्शन का डिजिटल रूप  
आप सभी की सेवा में आ गया है। इसमें  
आप भगवद्दर्शन के बाये अंकों के लेख पढ़  
सकेंगे, विभिन्न लेखों को पलट सकेंगे और  
अपने मित्रों के साथ साझा कर सकेंगे -  
और यह सब आप ऑनलाइन अपने  
स्मार्टफोन या टैब से कर सकेंगे। और यदि  
आप उन विषयों पर समीक्षा करना या प्रश्न  
पूछना चाहें तो वह भी सरलतापूर्वक कर  
सकेंगे।



1 वर्ष की  
सदस्यता (12 अंक)  
₹ 200  
केवल

(डिजिटल संस्करण की  
यह सुविधा अंग्रेजी पत्रिका  
'बैंक टू गॉडहॉउ' के लिए भी उपलब्ध है।)

सदस्य बनने के लिए [btgindia.com](http://btgindia.com) पर लॉगिन करें



# इन्द्रियतृष्णि पशुपत् है

यदि इन्द्रियभोग को ही जीवन का लक्ष्य माना जाये तो  
फिर मनुष्य और पशु में क्या अन्तर रह जायेगा?

ऋषभ देव उवाचः  
नायं देहो देहभाजां नृलोके  
कष्टान् कामानहर्ते विड्भुजां ये।  
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं  
शुद्धयेद्यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम् ॥  
(श्रीमद्भागवत 5.5.1)

कल हमने चर्चा की थी किस प्रकार ऋषभदेव ने राजकाज से सेवानिवृत्त होने के पहले अपने पुत्रों को भगवद् उपदेश दिया। पूर्वकाल में बड़े-बड़े राजा अपने राज-काज से सेवा-निवृत्त हो जाते थे। यह वैदिक सभ्यता है। यह नहीं कि जब तक आपको गोली से मार नहीं दिया जाये, तब तक आप अपने कार्य से निवृत्त नहीं होंगे। ऐसा नहीं होना चाहिए। हमें समय आने पर निवृत्त होना चाहिए।

चार आश्रम हैं - ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास। आजकल हिन्दू धर्म के नाम से बहुत कुछ चल रहा है। वस्तुतः हिन्दू शब्द वैदिक भाषा में नहीं है। हमारे शास्त्र में वर्णाश्रम धर्म का वर्णन आता है। चार वर्ण और चार आश्रम-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य,

ऋषभदेव अपने सौ पुत्रों को उपदेश देते हुए।

शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। इस वर्णाश्रम धर्म का पालन करने से जीवन सफल होता है। यही वैदिक सिद्धान्त है।  
वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परःपुमान् ।  
विष्णुराराध्यते पुंसां नान्यततोषकारणम् ॥  
(विष्णु पुराण 3.8.9)

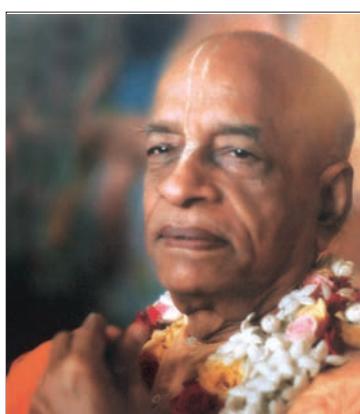
मनुष्य समाज में सभ्यता का आरम्भ वर्णाश्रम से होता है। जब तक समाज वर्णाश्रम धर्म का पालन नहीं करेगा, तब तक वह समाज पशुसमाज रहेगा, मनुष्य समाज नहीं माना जाएगा। वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परःपुमान् । भगवान् भगवद्गीता में बताते हैं चतुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः । भगवान्

ने चार वर्ण बनाये हैं-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। गुणकर्मविभागशः । यह विभाजन गुण और कर्म के अनुसार है, जन्म के अनुसार नहीं। आप किस प्रकार इसे हटा सकते हैं? हटने पर समाज मनुष्य समाज नहीं रह जाएगा, पशु समाज हो जाएगा।

## भागवत संदेश सबके लिए

वर्णाश्रम धर्म के अनुयायी महाराज ऋषभदेव को भगवान् का अवतार मानते हैं। कल हमने बताया था किस प्रकार जैन लोग भी ऋषभदेव को मानते हैं। तो चाहे जैन हो, हिन्दू हो, उनका उपदेश सबके लिए है। जैन हो, हिन्दू हो, मुसलमान हो या ईसाई हो, भागवत का उपदेश सबके लिए है।

दूसरा उदाहरण लें। भगवान् श्रीकृष्ण भगवद्गीता में कहते हैं, अन्नादभवन्ति भूतानि, अन्न पैदा करने से चाहे जानवर हो या मनुष्य, सब सुखी हो जायेंगे। अन्न उत्पादन करके सबको सुखी बनाना, यह हिन्दू, मुसलमान, जैन सबके लिए है। भगवान् तो एक हैं, परन्तु उनका वचन सबके लिए है। ऐसा नहीं है कि यह केवल हिंदुओं के लिए है, मुसलमान के



लिए नहीं। मुसलमान और हिन्दू के भगवान् अलग नहीं होते। भगवान् तो एक ही हैं। एकं ब्रह्मः द्वितीयो नास्ति। जैसे सोना है, हिन्दू के पास रहने वाला सोना क्या हिन्दू सोना हो जाएगा? और मुसलमान के पास क्या मुसलमान सोना हो जाएगा? सोना तो सोना है। वो चाहे हिन्दू के पास रहे, चाहे मुसलमान या जैन के पास रहे। धर्म स्वयं भगवान् से आता है। साक्षाद्भगवत्प्रणीतम्, इसलिए धर्म साम्प्रदायिक नहीं हो सकता। देश के कानून का उदाहरण लें। क्या वह हिन्दू और मुसलमान के लिए अलग-अलग होता है? वह सबके लिए एक होता है। इसी प्रकार भगवान् द्वारा बनाये गये धर्म के सूत्र सबके

कुत्ते का शरीर हो अथवा मनुष्य का। आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्य एतद पशुभिः नराणाम्। चाहे कुत्ते का शरीर हो या मनुष्य का शरीर हो, सभी को आहार, निद्रा, भय, मैथुन की आवश्यकता है। किन्तु कुत्ते के शरीर और मनुष्य के शरीर में कुछ भेद तो होना चाहिए। वही ऋषभदेव अपने पुत्रों को बता रहे हैं। नायं देहो देहभाजां नृलोके। यह जो मनुष्य शरीर मिला है, वह कूकर-शूकर की भाँति परिश्रम करके अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिए नहीं होना चाहिए। मनुष्य की मानसिकता रहती है कि कुछ रुपया कमायें और बैठकर उसका भोग करें। कुत्ते, सूअर, गधे के शरीर में यह संभव नहीं है। उनको तो

शरीर छोड़ने से पहले वानप्रस्थ और संन्यास तो ग्रहण करके कुछ तपस्या करनी चाहिए। तपस्या क्यों आवश्यक है? तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्धयेद्। अपनी सत्ता अथवा जीवन को शुद्ध करने के लिए।

हमें अपने जीवन को भी समझना होगा। न हन्यते हन्यमाने शरीरे। शरीर नष्ट हो जाने से जीव नष्ट नहीं होता है। देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा। तथा देहान्तर प्राप्तिः। यह शरीर नष्ट हो जाने के बाद हमें पुनः एक नया शरीर मिलेगा। उदाहरण स्वरूप - देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा। जैसे इस शरीर में ही बच्चा रहता है, फिर कुमार होता है, फिर बूढ़ा होता है, उसके बाद मरण होता है और उस मरण के बाद तथा देहान्तरप्राप्तिः फिर आरम्भ से बालक का शरीर, बालक शरीर से यौवन शरीर, यौवन शरीर से बूढ़ा शरीर, इसी प्रकार ये शरीर जाने के बाद और एक शरीर मिलेगा - तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति। इसलिए आगे जाकर हमको कौन-सा शरीर मिलेगा, इसके लिए तपस्या करनी है। नहीं तो वही जन्ममृत्युजराव्याधि दुःखदोषानुदर्शनम्, एक शरीर छोड़कर फिर एक शरीर ग्रहण करना पड़ेगा। उस शरीर में जो कर्म बंधन है उसको भोगना पड़ेगा, फिर शरीर छोड़ना और लेना पड़ेगा, ये क्रम चलता रहेगा। इसलिए शरीर छोड़ने से पहले शिक्षा मिलनी चाहिए कि शरीर छोड़ने पर हमें कौन-सा शरीर मिलेगा और उस विषय में हमको तैयार होना है।

यदि हम ऐसा नहीं करते तो मनुष्य जीवन को विफल गँवाते हैं। यह सभ्यता ठीक नहीं है। ऋषभदेव अपने पुत्रों को यही उपदेश दे रहे हैं। तपो दिव्यं पुत्रकायेन सत्त्वं शुद्धयेद्... अपने अस्तित्व को शुद्ध करना चाहिए। उसको क्यों शुद्ध किया जाए? यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम्। हम सभी लोग सुख चाहते हैं। हम लोग इतना परिश्रम क्यों करते हैं? सुख के लिए! किन्तु बार-बार शरीर छोड़ने में सुख कहाँ है? किन्तु हम लोग माया

## मनुष्य शरीर है तपस्या के लिए। केवल दिन-रात परिश्रम करके, नाइट शिफ्ट, डे शिफ्ट और मरने तक परिश्रम करते रहना, यह मनुष्य के लिए उचित नहीं है।

लिए है। ऐसा नहीं है कि किसी विशेष समाज, देश या पात्र के लिए है। नहीं! वे सबके लिए है। धर्म तु साक्षाद्भगवत्प्रणीतम्।

यहाँ भगवान् के अवतार ऋषभदेव अपने पुत्रों को शिक्षा देते हुए कह रहे हैं, नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टान् कामानर्हते विद्युभुजां ये। शरीर सभी का होता है। कुत्ते का भी होता है, सूअर का भी होता है, गधे का भी होता है और मनुष्य का भी होता है। किन्तु ऋषभदेव कह रहे हैं कि यह जो मनुष्य का शरीर है वह कष्टान् कामानर्हते विद्युभुजां ये, यह सूअर के समान अत्यधिक कष्ट करने के लिए नहीं है। यह शरीर चार वस्तु चाहता है, आहार, निद्रा, भय, मैथुन। कुछ खाने के लिए चाहिए, सोने के लिए चाहिए, भय से बचने की कुछ व्यवस्था चाहिए तथा मैथुन, इन्द्रियतर्पण, विशेषतः यौन संपर्क। सभी शरीरों को इन चार कार्यों की आवश्यकता है। चाहे

जब तक जीवन रहेगा, परिश्रम करना पड़ेगा और तब उनके शरीर की इच्छा पूरी होगी। इसलिए ऋषभदेव मना करते हैं कि ये मनुष्य शरीर विशेष शरीर है। शरीर की इच्छाओं को पूरा करने के लिए इतना परिश्रम उचित नहीं है। यह तो सूअर-गधे के लिए है, मनुष्य के लिए नहीं।

## मनुष्य शरीर किसलिए?

तो मनुष्य के लिए क्या उचित है? तपो दिव्यम्, मनुष्य शरीर है तपस्या के लिए। केवल दिन-रात परिश्रम करके, नाइट शिफ्ट, डे शिफ्ट और मरने तक परिश्रम करते रहना, यह मनुष्य के लिए उचित नहीं है। मनुष्य शरीर में कुछ समय तपस्या करने के लिए रखना चाहिए। इसलिए मनुष्य समाज में वर्णश्रम धर्म का विचार है कि ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास... कम-से-कम

के वशीभूत होकर उसी को सुख मानते हैं। परन्तु शास्त्र कहता है कि यह सच्चा सुख नहीं है। पहले तुम जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि पर जय करो, फिर तुम्हें सुख मिलेगा। यह ऋषभदेव का उपदेश है कि हमें अपना शरीर छोड़ने के पहले अपनी सत्ता अथवा जीवन को शुद्ध करना चाहिए। सत्त्वं शुद्धयेऽस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम्। तभी हमें सुख मिलेगा।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः। भगवान् भगवत्रीता में बता रहे हैं कि जीवात्मा उनका अंश है और भगवान् का रूप क्या है?

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः। अनादिरादिगोविन्दं सर्वकारणं करणम् ॥

(ब्रह्मसंहिता 5.1)

भगवान् का शरीर सच्चिदानन्द विग्रह है, हम लोगों के समान नष्ट होने वाला नहीं है। नहीं, भगवान् का ऐसा शरीर नहीं है। हम समझते हैं कि श्रीकृष्ण हमारे जैसे ही कोई व्यक्ति हैं। अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्। जो ऐसा समझता है वह मूढ़ है, मूर्ख है। वह नहीं जानता कि भगवान् का शरीर कैसा होता है।

## भगवान् सच्चिदानन्द विग्रह हैं

भगवान् स्वयं कहते हैं कि ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः— “ये जितने भी जीव हैं, सब मेरे अंश हैं।” तो जीव भी सच्चिदानन्दविग्रह हैं। सत् का अर्थ होता है शाश्वत या सनातन, न हन्ते हन्यमाने शरीरे, शरीर नष्ट हो जाने पर भी आत्मा नष्ट नहीं होती। उसका नाम है सत्, ॐ तत् सत्। और चित् का अर्थ होता है ज्ञान, ज्ञानवान। और आनन्दमय। तो यह हमारा स्वरूप है। मुक्ति का अर्थ होता है अपने मूल स्वरूप में स्थित होना। मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितः। अभी हमारा रूप अन्यथा रूप है, सच्चिदानन्द विग्रह नहीं है। वह मरने वाला है, नित्य नहीं है, अनित्य है, अज्ञानमय है और निरानन्दमय है। जब यह शरीर छोड़कर हमें सच्चिदानन्द स्वरूप प्राप्त होगा, उसका

नाम है मुक्ति।

इसलिए मनुष्य जीवन में तपस्या करनी चाहिए। ये मनुष्य जीवन है—तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्धयेद्। इस जीवन में हमें अपनी सत्ता शुद्ध करनी चाहिए। भगवान् कहते हैं जन्ममृत्युजराव्याधि दुःखोषानुदर्शनम्। तुम्हारा वास्तविक दुःख क्या है? बार-बार जन्म लेना और मरना, यही वास्तविक दुःख है। वृद्धावस्था ग्रहण करना और व्याधि से ग्रस्त होना। उसमें भी त्रिताप आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक। चूँकि हमें वर्णश्रम धर्म का ज्ञान नहीं है, हमने इसे छोड़ दिया है, हम जीवन के वास्तविक दुःख को समझ नहीं

भले कहीं भी हो, आपको चार कार्यों की सुविधा सहज ही प्राप्त होगी। ये कार्य हैं—आहार, निद्रा, भय और मैथुन। इनके लिए आपको परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं है। यदि हमें परिश्रम करना है तो भगवान् के साथ अपने टूटे हुए सम्बन्ध को पुनः स्थापित करने के लिए करना चाहिए। यदि भगवान् के साथ पुनः हमारा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तो हम जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जायेंगे। त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैत मामेति सोऽर्जुन। कृष्णभावनामृत आन्दोलन द्वारा हम लोगों को यही बात समझा रहे हैं कि हमें मनुष्य जीवन के वास्तविक उद्देश्य को भूलना

**यदि हमें परिश्रम करना है तो भगवान् के साथ अपने टूटे हुए सम्बन्ध को पुनः स्थापित करने के लिए करना चाहिए।**

पाते। हम सब तात्कालिक दुःख को मिटाने के लिए परिश्रम करते हैं। यह कार्य तो पशु भी करता है। तात्कालिक भूख लगी है “देखो जी, कहाँ खाने को मिलेगा।” सूअर ढूँढ़ता है कि गूँ कहाँ मिलेगा और जो मनुष्य है वह देखता है कि होटल कहाँ है, रेस्तरां कहाँ है। बात एक ही है— परिश्रम करके केवल खाना। शास्त्र में कहा गया है कि भगवान् ने तुम्हारे भोजन की व्यवस्था की है, फिर उसके लिए तुम्हें परिश्रम करने की कोई आवश्यकता नहीं है। तस्येव हेतोः प्रयत्नेत कोविदः न लभ्यते यद् भ्रमताम् उपर्यथः। भगवान् ने सबके लिए खाने का प्रबन्ध किया हुआ है। मनुष्य समाज में हम भोजन प्राप्त करने के लिए व्यापार करते हैं, किन्तु पशु आदि 80 लाख योनियों के लिए भोजन की व्यवस्था भगवान् ही करते हैं। वे हाथी को भी देते हैं और चींटी को भी देते हैं। यदि वे पशु-पक्षियों का पालन कर रहे हैं तो हमें क्यों नहीं देंगे?

शास्त्रों में कहा गया है कि आपका जन्म

नहीं है। हम यह नहीं कहते कि शरीर के कार्यों को छोड़ दिया जाये। नहीं, यह बात नहीं है। किन्तु हमें मनुष्य जीवन के वास्तविक उद्देश्य को भूलना नहीं है। और वह उद्देश्य क्या है? अपनी शरीर यात्रा के लिए योग्य कर्म करते हुए भगवान् के साथ अपना सम्बन्ध बनाये रखना है।

कृष्णभुलिया जीव भोग-वांछा करे।

पाठ्यतारे पिशाचीते माया तारे झापटिया धरे।

एक बंगाली वैष्णव कवि बताते हैं कि जब हम लोग कृष्ण को भूल जाते हैं, भगवान् को भूल जाते हैं और केवल दुनिया का भोग चाहते हैं, तो उसी का नाम है माया। माया और कुछ नहीं है। माया का अर्थ होता है जो वस्तु वास्तव में नहीं है। भगवान् को भूल जाना माया है, इसलिए भगवान् कहते हैं, मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते। माया से मुक्त होना कोई कठिन कार्य नहीं है। हमें केवल भगवान् को स्वीकार करना है और माया उसी समय भाग जाएगी।

बहुत-बहुत धन्यवाद।



# क्या लोग मूलतः अच्छे होते हैं या बुरे?

क्या कारण थे जिनके चलते रावण सुधार से परे बन गया।

- वैतन्य चरण दास

रामायण वर्णन करती है कि कैसे रावण ने अपने अधिकांश जीवन के लिए शैतानी कार्य किये और बार-बार अच्छी सलाह और कड़ी चेतावनियाँ दिये जाने के बाद भी सुधरने से मना कर दिया। “हम नहीं सुधरेंगे”, यह उक्ति रावण पर सटीक बैठती है। किन्तु यह मानवीय स्वभाव के विषय में एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाती है। क्या कुछ लोग स्वाभाविक रूप से बुरे होते हैं? यह एक बड़ा प्रश्न है कि क्या आम तौर पर लोग सहज रूप से अच्छे होते हैं या बुरे होते हैं?

आइए दोनों संभावनाओं पर विचार करें।

**क्या लोग मूलतः अच्छे होते हैं?**

हममें से अधिकांश लोग यहीं विश्वास करना चाहेंगे कि मूलतः लोग अच्छे होते हैं।

कम-से-कम हम चाहेंगे कि लोग विश्वास करें कि हम सहज रूप से अच्छे हैं। और यदि हम चाहते हैं कि लोग हमें अच्छा मानें तो क्या हमें उनके प्रति कृतज्ञता का अनुभव करते हुए उन्हें भी अच्छा नहीं मानना चाहिए?

निःसन्देह, लोगों के प्रति हमारी मान्यताएँ उनकी वास्तविकता को नहीं बदलती। जीवन के छोटे अनुभव भी हमें दिखा देते हैं कि लोग बुरा ही नहीं अपितु अत्यन्त कुत्सित व्यवहार भी कर सकते हैं। यदि हमें अपने जीवन में कभी ऐसे लोगों का सामना नहीं हुआ है तो हम उन गिने-चुने लोगों में से होंगे जो जीवन की कठोर सच्चाई से बच गये हैं। ऐसे सच्चाइयों को जानने के लिए दैनिक समाचारपत्र ही पर्याप्त हैं, जो लोगों द्वारा की

ने उन लोगों को इतनी गहराई से प्रभावित किया कि अब उनके बुरे व्यवहार के कारण उन्हें दोषी ठहराया जाना गलत है।

इस दृष्टिकोण के आधार पर लोगों के बुरे व्यवहार का एक ही समाधान है कि उन्हें अच्छा सामाजिक वातावरण दिया जाये। यदि लोगों को शिक्षा, रोजगार तथा अच्छा राजनीतिक वातावरण दिया जाये तो उनका जीवन बदल जायेगा और उनका सहज अच्छापन उजागर होगा। और यह सत्य भी है कि यदि लोगों को अच्छा वातावरण दिया जाता है तो वे सुधर जाते हैं।

किन्तु कुछ ऐसे भी हैं जो नहीं बदलते। अच्छा वातावरण दिये जाने पर भी वे केवल सुविधाओं का दुरुपयोग एवं शोषण करते हैं

अध्ययन किया था और उसके पास कभी भी धन की कमी नहीं थी। फिर भी वह दुष्ट अत्याचारी बन गया। उसे किसने ऐसा बना दिया? किसी बाह्य वस्तु अथवा परिस्थिति को उसके इस व्यवहार का उत्तरदायी ठहराना वास्तविकता के प्रति आँखें मूँदना होगा। हमें समझना होगा कि उसके अन्दर ही कुछ गड़बड़ थी।

आइए अब सिक्के का दूसरा पहलू देखें।

## क्या लोग मूलतः बुरे होते हैं?

यह विचार भयावह लगता है। हम सब सामाजिक प्राणी हैं और हमें निरन्तर लोगों के साथ ही रहना है। यदि सभी लोग सहज ही बुरे मान लिए जायें तो हमें धोखे, आक्रमण एवं शोषण के भय में जीवन बिताना पड़ेगा। जीवन पीड़ादायक हो जायेगा। और यदि हम यह मान लेते हैं कि सभी बुरे हैं तो उस 'सभी' में हम भी आ जाते हैं। यद्यपि अच्छे-से-अच्छा व्यक्ति भी कई बार बुरा कार्य कर बैठता है, तथापि हम मानते हैं कि हम मूलतः अच्छे हैं। यदि ऐसा न मानें तो स्वयं अपने साथ जीना कठिन हो जायेगा। यदि हम स्वयं को सहज बुरा मानने लगे तो हम स्वयं से घृणा करने लगेंगे और हमारा जीवन अनुपयोगी बन जायेगा।

यद्यपि हम यह स्वीकार करने में संकोच करते हैं कि सभी लोग स्वाभाविक रूप से बुरे होते हैं, तथापि हम निःसंकोच स्वीकार करते हैं कि कुछ लोग मानसिक रूप से विकृत होते हैं और बुरे बन जाते हैं। किन्तु प्रश्न बना रहता है कि वे भी मनुष्य हैं और किस प्रकार वे अन्य लोगों से भिन्न होते हैं। क्या उनके ऊपर मनोरोगी होने का ठप्पा लगाकर हम इस बात में सुख नहीं लेते कि 'हम वैसे नहीं हैं' या 'हम तो उनसे अच्छे हैं'? कहीं ऐसा तो नहीं कि उन्हें एक अलग वर्ग में रखकर हम इस तथ्य से आँखें मूँद रहे हैं कि उनका बुरापन किसी-न-किसी रूप में अथवा किसी-न-किसी मात्रा में हमारे अन्दर भी विद्यमान है?

कहीं ऐसा तो नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति में

**हमारे मन में पाप करने की सहज प्रवृत्ति है। और हमारे मन पर जितने अधिक बुरे संस्कार होंगे उसकी प्रवृत्ति उतनी अधिक मजबूत बन जायेगी।**

गयी हिंसा, हत्या तथा नरसंहर से भरे रहते हैं।

फिर भी हम आशा लगाये बैठे रहते हैं कि जिन लोगों का व्यवहार बुरा है, उनका स्वभाव अच्छा होगा। हमारी आशा समकालीन लोकाचार के इस विचार से जन्म लेती है कि मूलतः लोग अच्छे हैं। जब इन लोगों के भयानक व्यवहार एवं कार्य जगजाहिर होते हैं तो मुख्यधारा की मीडिया तथा शिक्षाविद् इन लोगों की बकालत करने लगते हैं। वे यह तर्क देते हैं कि इन बुरे लोगों के बुरे व्यवहार का कारण उनकी शिक्षा, उनकी आर्थिक स्थिति अथवा राजनीति हो सकती है। वे इसे नियति का खेल मानते हैं और कहते हैं कि आरम्भ में वे बुरे लोग निष्कलंक स्वच्छ जन्मे थे। और यदि कुछ समय बाद वे बुरे बन जाते हैं तो इसका पूरा श्रेय बाह्य बुरी परिस्थितियों को जाता है। इन बाह्य कारणों

और अपना दुर्व्यवहार जारी रखते हैं।

इतना ही नहीं, सामाजिक नियतिवाद की यह विचारधारा इस तथ्य को अनदेखा कर देती है कि अनेक बार समान बुरी पृष्ठभूमि वाले दो लोग जीवन की अलग-अलग राह पकड़ते हैं। एक प्रतिशोध लेने के लिए हिंसक बन जाता है और दूसरा उत्तरदायी एवं साधन सम्पन्न बनकर अपने आसपास फैले अंधेरे को माध्यम बनाकर एक उज्ज्वल भविष्य के लिए प्रकाश का मार्ग बनाता है।

सामाजिक नियतिवाद के साथ एक और समस्या यह है कि ऐसे अनेक बुरे लोग हैं जिनका अतीत बुरा नहीं था। उदाहरण के लिए, आतंकवादी बनने वाले अनेक लोग अच्छे परिवारों से आते हैं, और अच्छी तरह से शिक्षित एवं संपन्न होते हैं। ऐसे बुरे उदाहरण का एक अच्छा उदाहरण रावण है। उसका जन्म एक ऋषि से हुआ था, उसने शास्त्रों का

बुराई होती है और मानसिक रूप से विकृत इन लोगों में वह बुराई बहुत अधिक मात्रा में दिखायी देती है?

## सहजता के दो स्तर

हम मान बैठते हैं कि लोग मूल रूप से अच्छे हैं किन्तु वास्तविकता है कि लोग कभी-कभी बुरे भी होते हैं। इन दोनों विचारों में संतुलन किस प्रकार बनाया जाये? सहजता के दो स्तरों को समझकर ऐसा सम्भव है। भगवदीता में श्रीकृष्ण इसका वर्णन करते हैं। ये दो स्तर हमारे अंतःकरण के दो स्तरों से जुड़े हैं - पहला है आत्मा और दूसरा है मन। मूलतः हम आत्मा हैं। और भौतिक शरीर तथा बाह्य जगत् के साथ व्यवहार करने के लिए हमें मन दिया जाता है। आत्मा में सहज पुण्य की प्रवृत्ति है और मन में सहज पाप की प्रवृत्ति है।

हमारी आशा कि लोग सहज रूप से अच्छे होते हैं, यह विचार आत्मा के दृष्टिकोण से सही है। क्योंकि शुद्ध रूप में आत्मा समस्त सद्गुणों से युक्त है। आत्मा के रूप में हम भगवान् के अंश हैं और उस अलौकिक सम्बन्ध के कारण हमारे अंदर अच्छाई की ओर सहज रुझान है। और वर्तमान में किसी व्यक्ति का व्यवहार कैसा भी क्यों न हो, आत्मा की वह सच्चाई सबके ऊपर समान रूप से लागू होती है। किन्तु यदि किसी के बाह्य कार्य उसके आंतरिक स्वभाव एवं प्रवृत्ति के विरुद्ध हो जायें तो हमें समझना होगा कि वह अन्तर कहाँ से आया? क्या हमारे अन्दर ही ऐसा कुछ है जो हमें अपने सहज स्वभाव को छोड़कर विकृतियों को अंगीकार करने के लिए बाध्य करता है। जी हाँ, ऐसा ही है। हमारे मन में पाप करने की सहज प्रवृत्ति है। और हमारे मन पर जितने अधिक बुरे संस्कार होंगे उसकी प्रवृत्ति उतनी अधिक मजबूत बन जायेगी। और ये संस्कार हमारे इस जन्म एवं पूर्वजन्मों के कार्यों द्वारा बनते हैं।

इसका अर्थ हुआ कि जन्म के समय हम

पूरी तरह निष्कलंक एवं स्वच्छ नहीं होते। ऐसा नहीं है कि उस समय हमारे मनों में कोई संस्कार नहीं होते। न ही हम उस स्वच्छ दर्पण की तरह होते हैं जिसमें हमारी आत्मा की शुद्धता प्रतिबिम्बित होती रहती है। हमारे मन पर हमारे पूर्वजन्मों के अनेक संस्कारों की छवियाँ होती हैं। और चूँकि हमने अपने पूर्वजन्मों में अनेक प्रकार के कार्य किये होते हैं, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति पुण्य एवं पाप की सीढ़ी के किसी-न-किसी सोपान पर खड़ा होता है। यदि हमने अपने पूर्वजन्म में बुरे कार्य किये हैं तो हम आसुरी स्वभाव लेकर जन्म लेते हैं और उन बुरे संस्कारों के कारण हम इस

प्रवृत्ति की तुलना बिजली के करंट से करते हैं। यह करंट हमारे मन में प्रवाहित होकर अच्छे कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। किन्तु हमारे मन में बैठे संस्कार उस करंट को हमारी अंतर्निहित आध्यात्मिकता तक पहुँचने में कंडक्टर, सेमीकंडक्टर तथा इंसुलेटर का काम करते हैं, अर्थात् वे सहायक भी बन सकते हैं और बाधक भी। जब संस्कार कंडक्टर जैसे होते हैं तो लोग सहज रूप से अच्छे लगने लगते हैं और जब इंसुलेटर जैसे होते हैं तो लोग सहज ही बुरे लगने लगते हैं। किन्तु अधिकांश लोगों के संस्कार सेमीकंडक्टर का कार्य करते हैं।

**हमारे कार्य केवल हमारे पूर्व संस्कारों द्वारा निर्धारित नहीं होते। वे संस्कार हमें प्रेरित अवश्य करते हैं, किन्तु बाध्य नहीं करते।**

जीवन में भी सहज ही उसी प्रकार के बुरे कार्यों के प्रति प्रवृत्त होते हैं। इसी प्रकार यदि हमने अपने पूर्वजन्म में अच्छे कार्य किये हैं तो हमारा मन अच्छे संस्कारों से भरा होता है और वे संस्कार हमें इस जीवन में अच्छे कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं।

महत्वपूर्ण बात यह है कि हमारे कार्य केवल हमारे पूर्व संस्कारों द्वारा निर्धारित नहीं होते। वे संस्कार हमें प्रेरित अवश्य करते हैं, किन्तु बाध्य नहीं करते। स्वतन्त्र इच्छा आत्मा का सहज गुण है और वह हमारे पास सदैव रहती है। हम किस प्रकार अपनी स्वतन्त्र इच्छा का प्रयोग करते हैं, यह हमारे मानसिक संस्कारों तथा सामाजिक परिस्थितियों द्वारा निर्धारित होता है। आइए देखें किस प्रकार ये दो पहलू हमारे कार्यों को रूप देते हैं।

## कोई व्यक्ति 'सुधार से परे' क्यों बन जाता है

आइए अच्छे कार्य करने की हमारी सहज

फिर से वही बात, प्रवृत्त करने का अर्थ बाध्य करना नहीं है। भले ही लोगों के संस्कार उन्हें किसी विशेष प्रकार से व्यवहार करने के लिए प्रवृत्त करते हैं, किन्तु उनके व्यवहार के लिए केवल वे संस्कार ही पूरी तरह उत्तरदायी नहीं होते। उनके उन संस्कारों को व्यवहार में परिवर्तित करने में बाह्य परिस्थितियों का भी हाथ होता है। जिस परिवेश अथवा संस्कृति में पुण्य व्याप्त होता है, वहाँ लोग कम-से-कम खुलेआम पाप करने से कतराते हैं। जिस परिवेश में ताकत और भोग का बोलबाला होता है, वहाँ लोगों की द्विझक सहज दूर हो जाती है और वे गलत काम करने में अधिक विचार नहीं करते।

संग भी हमारे कार्यों को दिशा प्रदान करता है। अच्छे लोगों के संग से बुरी प्रवृत्ति के लोग भी अच्छाई की ओर मुड़ने लगते हैं, जबकि कुसंग में अच्छे लोगों में भी बुराई घर करने लगती है। इस प्रकार संस्कृति, परिवेश एवं संग व्यक्ति के कार्यों को रूप प्रदान करते

हैं।

यह विश्लेषण रावण पर किस प्रकार लागू होता है? दीर्घकाल पूर्व कुमारगणों से प्राप्त शाप के कारण उसके हृदय में सहज ही आसुरी प्रवृत्तियाँ थीं। उसका जन्म एक त्रिष्ण पिता तथा राक्षसी माँ द्वारा हुआ था। फलतः उसमें अपने पिता के गुण भी थे, जैसे शास्त्रों का अध्ययन करने की बुद्धि। किन्तु उसके अधिकांश गुण उसे अपनी माता के वंश से प्राप्त हुए। अपने माता-पिता के वंशों से अधिक उसका चरित्र उसके द्वारा किये गये चुनावों से गढ़ा गया था। वह अपनी आसुरी प्रवृत्ति के आधार पर दुष्ट कार्यों का चुनाव करता गया और अन्ततः उसका चरित्र ही वैसा बन गया। यद्यपि उसने कठोर तप किया,

श्रीराम द्वारा घातक बाण का प्रहार होते ही वह बम फट गया।

## आंतरिक युद्ध बाहर कैसे आ जाता है

अक्सर आंतरिक संस्कार एवं बाह्य प्रभाव अनेक जटिल समीकरणों में कार्य करते हुए व्यक्ति के कार्यकलापों को आकार देते हैं।

पाप की प्रवृत्ति उन स्थानों पर प्रकट हो सकती है जिसकी हमने कल्पना भी नहीं की होती। उदाहरणार्थ, वालि देवराज इन्द्र का पुत्र था किन्तु उसने स्वयं को क्रोध और घमण्ड द्वारा भ्रमित होने दिया। परिणाम यह हुआ कि वह अपने भाई को प्रताड़ित करने के लिए और उसकी पत्नी का भोग करने के

में आये उन्हीं श्रीराम की प्रेयसी गोपियों का भोग करने के लिए उन्हें चुराने का प्रयास किया। द्विविद में इस विकार का कारण उसका कुसंग रहा। उसने नरकासुर से मित्रता कर ली और अन्ततः वह भी असुरों के समान व्यवहार करने लगा।

ये उदाहरण दर्शाते हैं कि हम जिन संस्कारों के साथ जन्म लेते हैं, आवश्यक नहीं कि वे आजीवन हमारे साथ रहेंगे। जीवन के एक स्तर पर हमारा व्यवहार अलग होता है और दूसरे स्तर पर कुछ अलग। यहाँ तककि एक स्तर पर रहते हुए भी हमारी प्रवृत्ति लहरों के समान होती है - हम अच्छे संग एवं अच्छे कार्यों द्वारा सुधरने की क्षमता भी रखते हैं और कुसंग एवं बुरे कार्यों द्वारा विकृत होने की भी।

ये सब बारीकियाँ जटिल सामाजिक समस्याओं के सरल समाधान प्राप्त करने की दिशा में आने वाली बाधाओं को दर्शाती हैं। कुछ लोग गिर रहे सामाजिक ढाँचे को सभी समस्याओं का कारण बताते हैं। उनके अनुसार सत्ताधारी राजनेताओं में भ्रष्टाचार ही इसकी जड़ है। निःसन्देह अनेक राजनेता सामाजिक कल्याण से अधिक महत्व व्यक्तिगत लाभ को देते हैं, किन्तु बुरा व्यवहार केवल उन्हीं में नहीं देखा जाता। सच कहा जाये तो उनकी निन्दा करने वाले लोगों को यदि सत्ता दी जाये तो वे भी उन राजनेताओं के समान भ्रष्टाचार करने लगेंगे जिनकी वे निन्दा किया करते थे। हमें दूसरों पर आरोप लगाने से बचना होगा। इसके स्थान पर हमें चाहिए कि हमारे नियंत्रण के दायरे में जो कार्य हैं उन्हें पूरे उत्तराधित्व से निभाएँ और वैसा करने में दूसरों की सहायता भी करें।

## सामाजिक परिवर्तन से आंतरिक परिवर्तन

यद्यपि सामाजिक संरचना ही एकमात्र समाधान नहीं है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि बाह्य सामाजिक परिस्थितियाँ कोई मायने

अच्छे लोगों के संग से बुरी प्रवृत्ति के लोग भी  
अच्छाई की ओर मुड़ने लगते हैं, जबकि कुसंग में  
अच्छे लोगों में भी बुराई घर करने लगती है।

किन्तु अपने आंतरिक संस्कारों को शुद्ध करने के लिए नहीं अपितु बाह्य शक्तियों को बढ़ाने के लिए। इन तपस्याओं से उसे जो भी शक्ति प्राप्त हुई, उसने उनका उपयोग अपनी आसुरी प्रवृत्तियों को बढ़ाकर अधिकाधिक विनाश के लिए किया।

यदि वह लोगों के सदूपरामर्श मानता तो वह अपनी प्रवृत्तियों पर नियंत्रण रख सकता था। किन्तु उसकी प्रचण्ड शक्ति के साथ प्रचण्ड घमण्ड भी आया। इससे वह न केवल मनमौजी बन गया अपितु सदूपरामर्श देने वालों का अपमान भी करने लगा। और जब ताकत और घमण्ड के मादक मिश्रण में कामबासना की चिनगारी लगी तो मानो एक टाइम-बम तैयार हो गया। और जब उसने सीतादेवी का अपहरण किया, उसी क्षण से उस टाइम-बम में लगी घड़ी की उल्टी गिनती आरम्भ हो गयी। अन्त में

लिए उसे उठा लिया।

इसी प्रकार पुण्य की प्रवृत्ति भी असामान्य स्थानों पर प्रकट हो सकती है। रावण और विभीषण भाई थे, किन्तु विभीषण भगवान् के भक्त बने। श्रीराम ने उनके भक्तिमय गुणों के फलस्वरूप उन्हें लंका का राजा नियुक्त किया और उन्होंने अपने राजकाल में प्रजा को रावण के राजकाल से कहीं अधिक समृद्ध एवं सुखी बनाया।

भागवत श्रीराम के एक वीर वानर योद्धा का वर्णन करती है, जो अनेक वर्षों पश्चात् श्रीकृष्ण के विरुद्ध खड़ा हो गया और वृन्दावन में उनकी गोपियों को चुराने का प्रयास किया। उसका नाम था द्विविद। यह वही वानर था जिसने श्रीराम और उनकी प्रेयसी सीतादेवी का मिलन करवाने के लिए रावण से युद्ध किया। किन्तु बाद में वह इतना विकृत बन गया कि उसने श्रीकृष्ण के रूप

नहीं रखतीं। व्यक्ति के सुधरने का पूरा उत्तरदायित्व उसके कंधों पर डालना अन्यथा होगा। बाह्य पहलू भी मानवीय व्यवहार को आकार देते हैं।

उन लोगों का विचार करें जिन्होंने अपनी बुरी प्रवृत्तियों को पूरी तरह खुला छोड़ दिया है। भले ही उनके ये पापकार्य वर्तमान में लोगों को बुरी तरह पीड़ित करते हैं और भविष्य में उनके लिए भयानक कष्टों का निर्माण करते हैं, तथापि कुछ भी उनके बढ़ते कदमों को रोक नहीं सकता। ऐसे लोगों को तो शक्ति तथा कानून के दण्ड द्वारा ही रोका जा सकता है। इसलिए प्रत्येक सभ्य समाज में शक्तिशाली पुलिस एवं न्याय व्यवस्था की आवश्यकता है। रामायण में पापकार्यों से विमुख न होने की रावण की जिद ही युद्ध तथा उसके सर्वनाश का कारण बनी।

केवल कुकर्मियों को दण्ड देने के लिए ही सुगठित सामाजिक ढाँचे की आवश्यकता नहीं है, अपितु लोगों को उस दिशा में बढ़ने से रोकने के लिए भी है। यदि कानून न हो तो साधारण लोग सहज ही छोटे-मोटे अपराधी बन जायेंगे और छोटे-मोटे अपराधी घोर अपराधी। सामाजिक ढाँचा लोगों को सुधरने में भी सहायता करता है। कुछ लोग स्वभाव से अच्छाई के पक्ष में होते हैं, किन्तु यदि उनकी अच्छाई के कारण उनके ऊपर समस्याएँ आने का खतरा हो तो वे अच्छा व्यवहार नहीं करते। उदाहरण के लिए, लंका में गिने-चुने निवासी ही थे जिनमें विभीषण द्वारा रावण का त्याग करने के निर्णय का समर्थन करने का साहस था। शेष लोग भयभीत रहते थे।

किन्तु जब विभीषण को लंका का राजा नियुक्त किया गया, वे उनके धर्मपरायण शासन में सद्यव्यवहार करने लगे।

ये उदाहरण आंतरिक परिवर्तन में सामाजिक परिवर्तन की भूमिका स्पष्ट करते हैं। सामाजिक परिवर्तन एकमात्र कारण नहीं है, किन्तु यह एक सशक्त घटक बन सकता है। प्रमुख

उत्तरदायित्व व्यक्ति के ऊपर ही है, किन्तु सामाजिक ढाँचा उसे निखारने में सहायक हो सकता है।

## किसकी सहायता करें और कैसे

भले ही लोग वर्तमान में कैसा भी व्यवहार कर रहे हों, पुण्य की प्रवृत्ति सभी में है। यदि उन्हें समय, अवसर, प्रोत्साहन और सच्चा प्रेम दिया जाये तो वह प्रवृत्ति शक्ति बनकर उजागर हो जायेगी। हो सकता है कि वह इसी जीवन में नाटकीय परिवर्तन बनकर उजागर हो अथवा अनेक जन्मों में धीरे-धीरे उजागर हो।

भक्तियोग वह पद्धति है जो हमारी पुण्य प्रवृत्तियों को उजागर करने तथा पाप की प्रवृत्तियों को समाप्त करती है। यह पद्धति परिवर्तन करने की दिशा में इसलिए इतनी प्रभावशाली है क्योंकि यह केवल हमारी सीमित शक्ति पर नहीं अपितु भगवान् की

सुधार तथा निरन्तर सतर्क रहने की आवश्यकता है। एक ओर हमें अपनी अच्छाइयों को सींचना होगा, तो दूसरी ओर जब भी हमारे अन्दर बैठी कोई बुराई सतह पर आये हम सतर्कतापूर्वक उसका सामना करें। यदि कोई ये दो कार्य करने के लिए तैयार नहीं है तो उसकी अधिक सहायता नहीं की जा सकती। ऐसे में न तो वह व्यक्ति इस जीवन में अपनी अच्छाइयों को जान सकेगा और न ही दुनिया उन्हें जान सकेगी। हाँ, वे अच्छाइयाँ नष्ट नहीं होंगी और भावी जीवनों में भी उसके साथ रहेंगी।

केवल भावुक होकर दूसरों की सहायता नहीं की जा सकती। हमें स्मरण रखना होगा कि उनकी सहायता तभी की जा सकती है, जब वे सहायता लेने के लिए तैयार होंगे। यदि वे सदपरामर्श सुनने के लिए तैयार नहीं हैं, हमें उनसे दूरी बनाये रखनी होगी जिससे वे हमें

**अच्छाई सभी के हृदय में निवास करती है, वह अपने-आप उजागर नहीं होती। उसे उजागर करने के लिए बुरा करने की प्रवृत्ति के साथ संघर्ष करना पड़ता है।**

असीमित शक्ति पर आधारित है। इसलिए इसमें आश्र्य नहीं कि भक्तिमय शास्त्र घोषणा करते हैं कि व्यक्ति अपनी वर्तमान स्थिति में कितना भी विकृत क्यों न हो गया हो, वह सदैव उठ सकता है, सुधर सकता है। किन्तु इसमें एक बड़ी शर्त है – वह है कि सुधरने की इच्छा का होना। इस तैयारी के बिना कोई भी हमारी सहायता नहीं कर सकता, भगवान् भी नहीं। यहाँ तककि श्रीराम भी रावण को सुधार नहीं पाये।

अच्छाई सभी के हृदय में निवास करती है, वह अपने-आप उजागर नहीं होती। उसे उजागर करने के लिए बुरा करने की प्रवृत्ति के साथ संघर्ष करना पड़ता है।

इस संघर्ष के लिए पूरे समर्पण के साथ

नीचे न खींच लें। निःसन्देह, हम उनके उत्थान के लिए प्रार्थना अवश्य कर सकते हैं, और हमें करनी भी चाहिए। किन्तु हमें समझना होगा कि हम सुधरने में उनकी सहायता नहीं कर सकेंगे। जिस व्यक्ति में सर्वाधिक सुधारकार्य कर सकते हैं, वह हम स्वयं हैं।

यदि हम अपनी पूरी क्षमता से कार्य करेंगे, हममें से प्रत्येक व्यक्ति अपने आंतरिक जगत् में तथा बाह्य जगत् में एक सकारात्मक परिवर्तन ला सकता है।

चैतन्य चरण दास इस्कॉन चौपाटी में रहते हैं। उन्होंने बाईस से अधिक पुस्तकों की रचना की है। भगवद्गीता पर प्रतिदिन प्रकाशित होने वाले उनके जीवनोपयोगी लेखों को पढ़ने के लिए [thespiritualscientist.com](http://thespiritualscientist.com) पर जायें।



## डिग्री आवश्यक है, किन्तु केवल कुछ 'डिग्री' तक ही

आधुनिक शिक्षा पर एक दृष्टिकोण

- जितेन्द्र सवनौर

एल्बर्ट आइंस्टीन ने कहा था, ‘‘शिक्षा वह है जो स्कूल में सीखी गयी हर बात को भूल जाने के बाद बच्ची रहती है।’’ यह कथन उन दिनों शिक्षण-प्रणाली की शिथिलता को

दर्शाता है, और रोचक बात यह है कि वर्तमान प्रणाली में भी उससे कुछ अधिक भिन्न नहीं है। किन्तु अजीब बात यह है कि हम सहज ही शिक्षा (साक्षरता) की तुलना विवेकबुद्धि

से करते हैं। शिक्षा और उससे प्राप्त डिग्री को ट्रॉफी मान लिया जाता है, मानो वह व्यक्ति की विवेकबुद्धि, उसके ज्ञान तथा संसार में कुछ बड़ा कर गुजरने का प्रमाण हो। हो



सकता है कि कुछ लोगों के लिए यह सही भी हो, किन्तु वर्तमान समय में ऐसे लोग विरले ही रहे जिन्होंने मौलिक एवं नैतिक दृष्टिकोण से दुनिया के उत्थान में कुछ सकारात्मक किया हो। शिक्षा का अर्थ है व्यक्ति का उत्थान करना, पोषण करना, उसे प्रशिक्षित करना अथवा उसे गढ़ना।

इसका उद्देश्य व्यक्ति की आंतरिक प्रतिभाओं एवं शक्तियों को उजागर करके उनका विकास एवं पोषण करना है। तब वे प्रतिभाएँ दुनिया पर सकारात्मक प्रभाव छोड़ सकेंगी।

किन्तु सकारात्मक प्रभाव की बात तो दूर, वर्तमान शिक्षण प्रणाली के प्रभाव न्यूनाधिक नकारात्मक एवं खेदजनक हैं। आज वर्तमान उद्योगों एवं कार्यालयों की आवश्यकता से कहीं अधिक डिप्रियाँ बाँटी जा रही हैं। परिणाम है बेरोजगारी। लोगों को रोजगार मिलता भी है तो ऐसे क्षेत्र में जो उसकी शिक्षा से बिल्कुल अलग होता है। और इस शिक्षा में नैतिक एवं सामाजिक मूल्य मानो एक सपना बनकर रह गये हैं। भले ही इसमें शिक्षण पद्धति अथवा शिक्षकों का दोष हो, या फिर छात्र की ग्राह्यक्षमता का, परिणाम यह है कि बड़े-बड़े शैक्षणिक संस्थान भी अपने विद्यार्थियों की मूलभूत कुशलताओं का विकास करने में अक्षम सिद्ध हो रहे हैं।

## शिक्षा अथवा ज्ञान का उद्देश्य आध्यात्मिक प्रबोधन

अमरीका के एक विख्यात शैक्षणिक संस्थान एमआईटी में बोलते हुए उन्होंने अपने श्रोताओं से पूछा कि क्या इस विश्वविद्यालय में आत्मा का अध्ययन करने के लिए कोई विभाग है अथवा नहीं। श्रील प्रभुपाद का मानना था कि भौतिक शिक्षण एवं भौतिक वैज्ञानिक अनुसंधान भौतिक दृष्टि से कितनी भी प्रगति क्यों न कर ले, वह सदैव आत्मा तथा कृष्णभावना के ज्ञान से निम्न ही रहेंगे।

भगवद्गीता के नौवें अध्याय के दूसरे श्लोक में प्रभुपाद लिखते हैं – “विश्वभर में ज्ञान के अनेक विभाग एवं बड़े-बड़े विश्वविद्यालय हैं। परन्तु दुर्भाग्य है कि किसी भी विश्वविद्यालय या शैक्षणिक संस्थान में आत्मज्ञान की शिक्षा नहीं दी जाती।” प्रभुपाद एक ऐसे समाज को संजोना चाहते थे जिसमें हमारी बौद्धिक क्षमता सहित हमारी सभी प्रतिभाओं का उपयोग श्रीकृष्ण की सेवा में किया जा सके, जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपनी सहज प्रवृत्तियों के माध्यम से पूर्णता का स्तर प्राप्त कर सके। श्रीमद्भागवत में (1.2.13) ऐसे श्रीकृष्ण-केन्द्रित समाज का वर्णन किया गया है –

अतः पुम्भिर्द्विजश्रेष्ठा वर्णश्रम विभागशः ।  
स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिरितोषणम् ॥  
“हे द्विजश्रेष्ठ, निष्कर्ष यही है कि अपने वर्ण तथा आश्रम के अनुरूप अपने धर्म एवं कर्तव्यों के पालन द्वारा भगवान् हरि को प्रसन्न करना सर्वोच्च पूर्णता है।”

किसी भी समाज में अपरिहार्य रूप से लोगों के चार विभाग होते हैं। कुछ लोग विद्वान् होते हैं, कुछ प्रशासक, कुछ वाणिज्य एवं कृषि करने वाले और अन्त में कुछ श्रमिक वर्ग के लोग। इन सभी की सफलता इसी में है जब सभी वर्ग के लोग सर्वोच्च लक्ष्य, जो श्रीभगवान् की प्रसन्नता है, इस हेतु को प्राप्त करने के लिए परस्पर सहयोग करें।

## क्या शिक्षण पर्याप्त है?

क्या आत्मसाक्षात्कार के लिए शिक्षण पर्याप्त है? वेद कहते हैं ‘नहीं’। ज्ञान के गुणों की सूची का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण (भगवद्गीता 13.8) सर्वप्रथम अमानित्वम् (नप्रता) तथा अदमित्वम् (गर्वशून्यता) का वर्णन करते हैं। रोचक तथ्य तो यह है कि इस सूची में उच्चशिक्षण अथवा बौद्धिक दक्षताओं का कहीं कोई वर्णन नहीं है। महारानी कुन्ती एक कदम आगे जाती हुई कह देती हैं कि सुन्दरता, उच्चकुल में जन्म, तथा शिक्षण भक्तिमार्ग में बाधाएँ हैं (श्रीमद्भागवत 1.8.26)। स्वयं कुरुक्षेत्र जैसे उच्चकुल से जुड़ी होने के बाद उनके द्वारा ऐसा कहना वास्तव में विचारणीय बात है। वैष्णव आचार्यों के अनुसार सुन्दरता, उच्च शिक्षण एवं उच्चकुल में जन्म व्यक्ति को घमण्डी बना सकता है और श्रीकृष्ण के वचनानुसार घमण्ड भक्ति के लिए सर्वदा प्रतिकूल है। इन उपलब्धियों के साथ आने वाला घमण्ड हमें सदा के लिए इस भौतिक संसार में बाँधने के लिए पर्याप्त है।

जब श्रीचैतन्य महाप्रभु दक्षिण भारत की यात्रा कर रहे थे, वहाँ श्रीरंगम् में उनकी भेंट एक ब्राह्मण से हुई। यह ब्राह्मण भगवद्गीता पढ़ने का प्रयास कर रहा था, जबकि वह

ठीक से संस्कृत श्लोकों का उच्चारण नहीं कर पा रहा था। मंदिर के अन्य ब्राह्मण उसका उपहास कर रहे थे। किन्तु महाप्रभु को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह ब्राह्मण गीता पढ़ते हुए आँसू बहा रहा था।

जब महाप्रभु ने उसके अश्रुपात का कारण पूछा, वह बोला, “मेरे गुरु महाराज ने मुझे प्रतिदिन गीता-पाठ करने का आदेश दिया है। यद्यपि मैं ठीक से संस्कृत पढ़ नहीं पाता, तथापि अपने गुरु के आदेशानुसार मैं प्रयास करता हूँ। अर्जुन को उपदेश दे रहे श्रीकृष्ण के अद्भुत रूप का स्मरण करके मेरा चित्त भावविभोर हो उठता है।”

यह सुनकर श्रीचैतन्य महाप्रभु ने ब्राह्मण को गले लगां लिया और घोषणा की कि उनके अनुसार वह ब्राह्मण भगवद्गीता का सर्वश्रेष्ठ विद्वान् है, क्योंकि उसमें गीता के सन्देश को समझने के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण नम्रता एवं भक्ति जैसे गुण हैं।

## शिक्षण का महत्व

यह भक्तिमार्ग की सुन्दरता है कि हम अपना सर्वस्व भगवान् की सेवा में नियुक्त कर सकते हैं। आध्यात्मिक पथ पर प्रगति करने

के लिए हमें कुछ भी त्यागने की आवश्यकता नहीं है। जब हम अपनी प्रतिभाओं एवं उपलब्धियों को भगवान् की सेवा में लगाते हैं, अस्थाई होने पर भी वे आध्यात्मिक बन जाती हैं। अन्ततः देखा जाये तो भौतिक एवं आध्यात्मिक में चेतना का ही अन्तर है। प्रभुपाद भक्तिरसामृतसिन्धु (1.2.255-256) में श्रील रूप गोस्वामी द्वारा लिखे इस श्लोक को बार-बार उद्धृत करते थे -

अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयुज्जतः ।  
निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते ॥  
प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धिवस्तुनः ।  
मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्नु कथ्यते ॥

“जब मनुष्य किसी भी वस्तु से आसक्त नहीं होता और प्रत्येक वस्तु को भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में स्वीकार करता है तब वह स्वामित्व की भावना से पूरी तरह मुक्त हो जाता है। दूसरी ओर, जो व्यक्ति नहीं जानता कि किस प्रकार सृष्टि की प्रत्येक वस्तु का सम्बन्ध भगवान् से है, और इस प्रकार उन वस्तुओं का त्याग करता है, उसका वैराग्य अपूर्ण है।”

भले ही हमारे कार्य दिखने में निपट भौतिक हों, किन्तु हम जितना अधिक उन्हें श्रीकृष्ण

से जोड़ेंगे, वे उतना अधिक आध्यात्मिक बन जायेंगे। प्राचीन काल के युधिष्ठिर, परीक्षित तथा कुलशेखर जैसे राजा इसी चेतना में अपनी प्रजा पर शासन करते थे। अपनी प्रजा को भगवान् की संतान मानकर वे उनकी भौतिक एवं आध्यात्मिक प्रगति एवं प्रसन्नता के लिए कार्य करते। इस प्रकार भक्ति हमारे कार्यों को अध्यात्मीकृत करने का सरल-सहज मार्ग प्रस्तुत करती है।

भगवद्गीता (3.21) में श्रीकृष्ण कहते हैं,  
यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।  
सयत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

“महापुरुष जैसा आचरण करता है, सामान्य लोग उसका अनुसरण करते हैं। अपने कार्यों से वह जो आदर्श स्थापित करता है, समग्र विश्व उसका अनुगमन करता है।” व्यक्ति अपने शिक्षण द्वारा अनेक लोगों को प्रभावित कर सकता है। यदि ऐसा व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन स्वीकार करता है तो उसे देखकर अनेक लोग आध्यात्मिक पथ को स्वीकार कर सकते हैं। इस प्रकार शिक्षण तथा इस संसार में व्यक्ति का पद सामान्य लोगों को भगवान् की ओर मुख करने तथा

## प्रार्थना के क्षण



गोलोक का प्रेमधन भगवान् हरि के नाम-सकीर्तन के रूप में अवतरित हुआ है। किन्तु उस के प्रति मेरा कोई अनुराग उत्पन्न नहीं हुआ है। मेरा हृदय दिन-रात संसार के विषयों की अग्नि में दहक रहा है और दुर्भाग्य से मैंने इससे मुक्त होने का कोई उपाय भी नहीं ढूँढ़ा है।

इस कलियुग में ब्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण शर्वीमाता के पुत्र के रूप में अवतरित हुए हैं और बलरामजी श्रीनित्यानन्द प्रभु के रूप में। हरिनाम ने सभी पतित जीवों का उद्धार कर दिया है और जगाइ-मधाइ नामक दो पापी इसके प्रमाण हैं।

- नरोत्तमदास ठाकुर

अपने जीवनों को सुधारने की दिशा में प्रेरित कर सकते हैं। फलतः वे वर्णश्रम के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे, जो है भगवान् श्रीकृष्ण की प्रसन्नता।

यहाँ प्रकाशनन्द सरस्वती एवं सार्वभौम भट्टाचार्य के उदाहरण उल्लेखनीय हैं। ये दोनों वेदों में वर्णित अद्वैतवाद के परम विद्वान् थे और सर्वत्र इनका सम्मान होता था। किन्तु श्रीचैतन्य महाप्रभु से भेंट के बाद जब इनका हृदय परिवर्तित हुआ, तो उनके पीछे-पीछे हजारों लोगों ने भक्तिमार्ग स्वीकार कर लिया।

## शून्यों के सामने एक लगाना

मार्टिन लूथर किंग (जूनियर) ने सही कहा

था, “हमारी वैज्ञानिक शक्ति आध्यात्मिक शक्ति पर हावी हो गयी है। हमारे पास निशाने पर सधी मिसाइलें हैं, किन्तु उन्हें सम्भालने वाले लोग सधे हुए नहीं हैं।” सामान्यतया लोग भ्रमित हैं कि क्या किया जाये और क्या नहीं। आध्यात्मिकता के पथ पर चलते हुए हमारी कुशलताओं को संलग्न करने के लिए एक सकारात्मक दिशा प्राप्त होती है। जैसाकि प्रभुपाद अकसर कहा करते थे कि इस संसार में हमारी सारी उपलब्धियाँ बड़े-बड़े शून्य हैं, किन्तु जब हम श्रीकृष्ण की भक्ति करते हैं तो वह उन शून्यों के सामने एक लगाने के समान है। वह ‘एक’ उन सभी शून्यों के मूल्य को बढ़ा देता है। इसलिए यदि कोई व्यक्ति उच्चशिक्षा प्राप्त करना चाहता

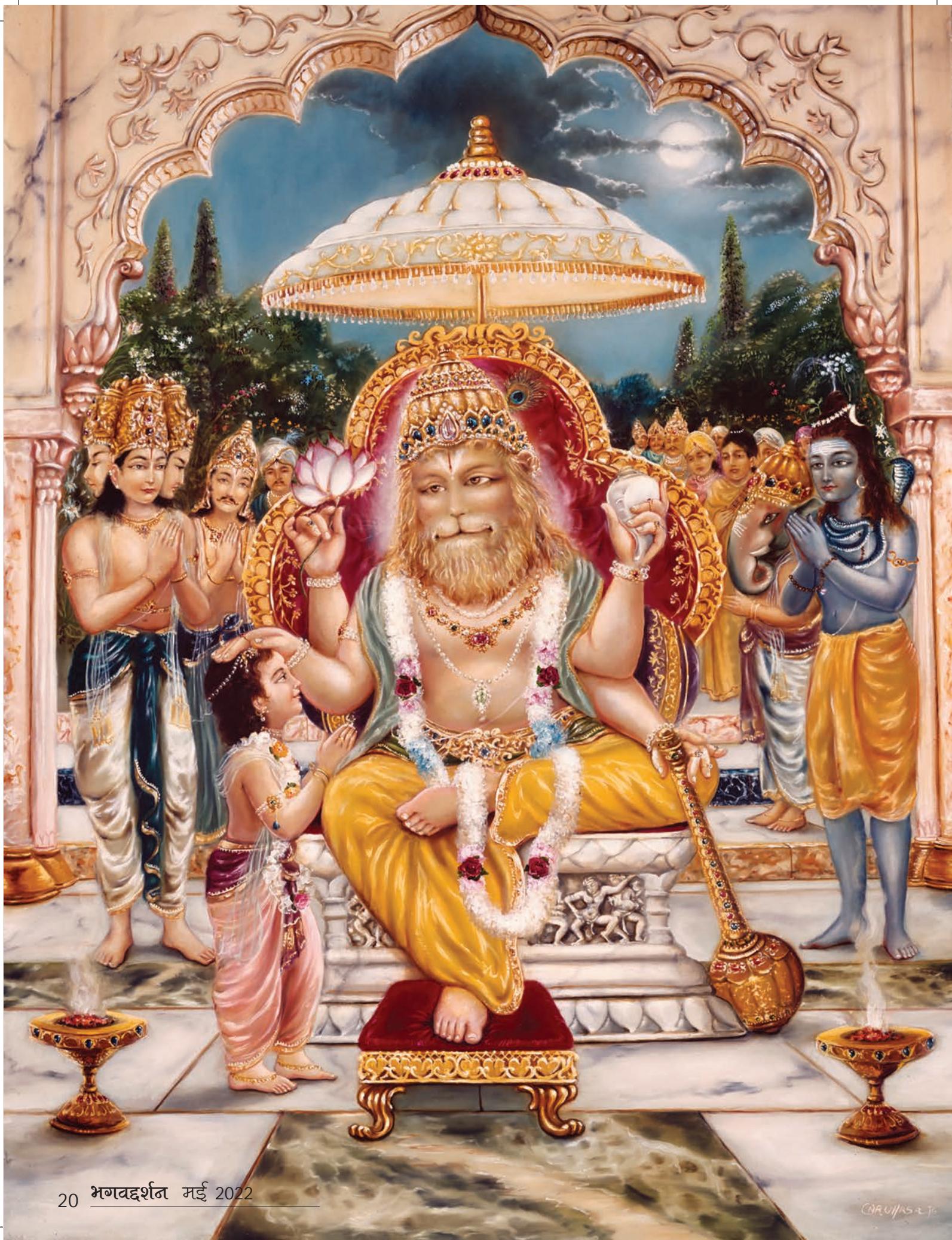
है तो वह इसके साथ-साथ अपने आध्यात्मिक मूल्यों को कायम रख सकता है तथा आध्यात्मिक लक्ष्यों की ओर निरन्तर प्रगति कर सकता है। इस प्रकार व्यक्ति अपनी शिक्षा को अध्यात्मीकृत करके कृष्णभक्ति के अभियान को आगे बढ़ा सकता है। अतः हम चाहे शिक्षित हों या नहीं, भले ही हमारे पास कोई डिग्री हो या नहीं, हम भगवान् का आश्रय लेकर आत्मसाक्षात्कार की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं।

जितेन्द्र सरनैर इस्कॉन पूना युवा संघ के माध्यम से कृष्णभावना से जुड़े। उन्होंने कम्प्यूटर विज्ञान में स्नातकोत्तर डिग्री प्रपात की है और न्यूजर्सी, अमरीका में रहते हुए गोल्डमैन सैश के तकनीकी विभाग में कार्यरत हैं।

## हरिनाम संकीर्तन

कलियुग में भगवान् के अवतार श्रीचैतन्य महाप्रभु ने संकीर्तन आन्दोलन की स्थापना करके हमारी सारी समस्याओं की औषधि हमें दी है। संकीर्तन का अर्थ है भगवान् के नामों का कीर्तन करना तथा अन्य समस्त कार्यों का त्याग करना। कीर्तन शुद्धिकरण की एक विधि है। जिस प्रकार हम साबुन द्वारा अपने शरीर को शुद्ध करते हैं, उसी प्रकार कीर्तन हमारे आध्यात्मिक शरीर को शुद्ध करता है। शुद्धिकरण की तीन अवस्थाओं में सर्वप्रथम है मन रूपी दर्पण को स्वच्छ करना। भगवद्गीता में कहा गया है, “मन सबसे अच्छा मित्र भी है और सबसे बुरा शत्रु भी। जिसने मन को नियंत्रित करना सीख लिया है उसके लिए मन मित्र है, परन्तु जो ऐसा नहीं कर पाया है मन सबसे बुरा शत्रु है।” दीर्घकाल से भौतिक संग के कारण हमारा मन भौतिक वस्तुओं में लीन रहकर दूषित हो गया है और यह कीर्तन मन को शुद्ध करने की विधि है। (श्रील प्रभुपाद द्वारा 29 अगस्त 1973 को लिखे एक पत्र से)





# प्रह्लाद महाराज के दिव्य गुण

इतनी छोटी अवस्था में इन अद्भुत गुणों का प्रदर्शन करके प्रह्लाद महाराज एक महाजन बन गये।

-पुरुषोत्तम निताइ दास

श्रीमद्भागवतम् में देवर्षि नारद महाराज युधिष्ठिर के सम्मुख प्रह्लाद महाराज के अनेक भक्तिमय गुणों का वर्णन करते हैं। प्रह्लाद भगवान् विष्णु के एक महान् भक्त थे। उन्होंने अपना पूरा जीवन भगवान् के दिव्य रूप एवं गुणों के स्मरण में व्यतीत किया। बचपन से उनके हृदय में केवल एक इच्छा प्लवित हो रही थी, वह थी अपने हृदयकमल पर भगवान् श्रीकृष्ण को स्थापित करने की इच्छा।

सामान्य लोग भौतिक वस्तुओं का ध्यान करते हैं और मानसिक एवं शारीरिक रूप से सांसारिक कार्यों में संलग्न होते हैं।

किन्तु प्रह्लाद जैसे शुद्ध भक्त कभी भौतिक विषयों के स्मरण में समय व्यर्थ नहीं गँवाते और केवल ऐसे शास्त्रानुमोदित कार्य करते हैं जो उन्हें भगवान् के चरणकमलों के निकट ले जाते हैं।

आइए प्रह्लाद महाराज के असंख्य अद्भुत गुणों में से कुछ की चर्चा एवं उनपर ध्यान करें।

## 1. महान् भक्त

श्रीमद्भागवतम् 7.4.33 में नारदमुनि कहते हैं कि असुरकुल में जन्म लेने पर भी प्रह्लाद भगवान् विष्णु के महान् भक्त थे। जब प्रह्लाद अपनी माता कथाधू के गर्भ में थे,

उस समय नारदमुनि के दिव्य उपदेशों के कारण प्रह्लाद भगवान् के भक्त बने। प्रह्लाद सतत भगवान् के चरणकमलों पर ध्यान करते हुए असीम आनन्द का अनुभव करते।

नारदमुनि प्रह्लाद की भावभक्ति का वर्णन करते हैं, “कृष्णभक्ति में उन्नति के कारण वे कई बार रोते, कई बार हँसते, कई बार हर्षित होते और कई बार उच्चस्वर में गाते।” (भागवत 7.14.39)

श्रीमद्भागवतम् (6.3.20-21) में भगवान् के बाहर महान् भक्तों का वर्णन किया गया है,

जिनमें से एक प्रह्लाद महाराज हैं।

## 2. निर्भय प्रह्लाद

जब नन्हे प्रह्लाद के पिता हिरण्यकशिपु ने उन्हें मारने का प्रयास किया, वे अविचलित रहे। अज्ञानता एवं अहंकारवश असुरराज भगवान् विष्णु को अपना शत्रु मानता था। जब उसे पता चला कि उसका पुत्र विष्णुभक्त है, वह क्रोध से तमतमा उठा। उसने अपने पाँच वर्ष के अबोध पुत्र को प्रताड़ित करने तथा मारने का निश्चय किया। श्रीमद्भागवत

में उसके इन अत्याचारों का वर्णन है। “हिरण्यकशिपु के राक्षस सेवक प्रह्लाद महाराज के कोमल अंगों को त्रिशूलों से बींधने लगे। सभी राक्षसों के चेहरे अत्यन्त भयानक, दाँत नुकीले एवं लालिमायुक्त तथा दाढ़ी-बाल ताप्रवर्णी थे। वे अत्यन्त भयावह दीख रहे थे। “काट डालो! बींध डालो!” की प्रचण्ड ध्वनि करते हुए वे शान्त बैठकर श्रीभगवान् पर ध्यान कर रहे प्रह्लाद महाराज पर प्रहार करने लगे।” (भागवत 7.5.39)

प्रह्लाद ने आत्मरक्षा का कोई प्रयास नहीं किया। शक्तिशाली





असुरों के सम्मुख वे निर्भय बैठे थे। यह देख रक्तपिपासु वे असुर अग्नि के समान भभक उठे। इस भीषण संकटकाल में भी प्रह्लाद निर्भय कैसे थे? यह तथ्य समूचे ब्रह्माण्ड को अपनी मुद्दी में करने वाले शक्तिशाली निरंकुश शासक हिरण्यकशिपु की समझ से परे था। उसने पाँच वर्ष के प्रह्लाद को प्रताड़ित करने और मारने का हर सम्भव प्रयास किया। किन्तु प्रह्लाद सदैव शान्त एवं प्रमुदित रहता। यह कैसे सम्भव था। इसे समझने के लिए आइए प्रह्लाद के अगले गुण पर विचार करें।

### 3. भगवान् में विश्वास

उन्हें भगवान् के संरक्षण में पूरा विश्वास था और इसलिए उन्हें किसी प्रकार की चिन्ता नहीं थी। महान् संकटों में भी वे कभी विचलित नहीं होते। वे यही सोचते कि किस प्रकार अपने जीवन का प्रत्येक क्षण भगवद्स्मरण एवं भगवद्सेवा में समर्पित किया जाये। जिस प्रकार एक बालक को सदैव विश्वास होता है कि संकट के समय उसके पिता उसकी रक्षा करेंगे, उसी प्रकार प्रह्लाद को अपने परमपिता

सका। अन्ततः भगवान् विष्णु प्रह्लाद को आनन्द प्रदान करने के लिए श्रीनृसिंहदेव का रूप लेकर आये और हिरण्यकशिपु का वध कर दिया।

भगवान् की कृपा में पूरे विश्वास को व्यक्त करते हुए प्रह्लाद कहते हैं, “समस्त कारणों के कारण, प्रत्येक वस्तु के स्रोत श्रीभगवान् को सन्तुष्ट करने वाले भक्तों के लिए कुछ भी अप्राप्य नहीं है।” (भागवत 7.6.25)

### 4. सभी के लिए करुणा

हिरण्यकशिपु का वध करने के बाद नृसिंहदेव ने प्रह्लाद से कोई वरदान माँगने के लिए कहा। वे कुछ भी माँग सकते थे और भगवान् तुरन्त उनकी इच्छा पूरी कर देते। किन्तु पाँच वर्षीय प्रह्लाद अपने लिए कुछ नहीं चाहते थे। भगवान् के चरणकमलों का आश्रय लेने के कारण उन्हें इस भयावह भौतिक जगत् का भी कोई भय नहीं था। उन्हें केवल मायासुख में व्यस्त बद्धजीवों के उद्धार की ही चिन्ता थी।

के संरक्षण पर पूरा विश्वास था। इसलिए जब प्रह्लाद के सांसारिक पिता हिरण्यकशिपु ने उन्हें प्रताड़ित करना आरम्भ किया, भगवान् विष्णु के संरक्षण पर पूरा विश्वास होने के कारण वे मानसिक अथवा भावनात्मक रूप से अविचलित बने रहे। और दुनिया जानती है कि हिरण्यकशिपु अपनी सारी शक्ति लगाकर भी प्रह्लाद का बाल तक बाँका नहीं कर

“हे भगवन्, मुझे इस भौतिक जगत् का भय नहीं है क्योंकि मेरा चित्त सदैव आपके यशोगान में पूर्णतः निमग्न रहता है। मुझे चिन्ता है तो इन मूर्खों की जो अपने परिवार, समाज एवं राष्ट्र का पालन करते हुए भौतिक सुख की बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाते रहते हैं।” (भागवत 7.9.43)

जिस प्रकार सूर्य के बिना प्रकाश नहीं हो सकता, उसी प्रकार श्रीकृष्ण के बिना सुख नहीं हो सकता। अतः प्रह्लाद के चित्त में गहन उत्कण्ठा थी कि प्रत्येक जीव भगवान् का आश्रय ले। वे बार-बार बद्धजीवों को उनके दुःखों से मुक्त करने की याचना करते हैं। श्रीभगवान् के ही समान प्रह्लाद भी सभी के प्रति समभाव रखते और शत्रु-मित्र की भावना से मुक्त थे। वे सभी के परमहितैषी थे और सभी जीवों के प्रति उनके हृदय में करुणा थी। यहाँ तककि उन्होंने भगवान् से अपने पिता को क्षमा करने की याचना भी की। उनके मन में अपने पिता के प्रति कोई दुर्भावना नहीं थी।

### 5. खेलकूद में अधिक रुचि नहीं

प्रह्लाद का यह गुण मुझे बहुत भाता है। बचपन के खेलकूदों में उनकी कोई रुचि नहीं थी। वे अपने समय का उपयोग भगवद्भक्ति में करते। जब भी खेलने का समय होता, प्रह्लाद के सहपाठी उन्हें अपने साथ खेलने के लिए बुलाते। किन्तु एक सच्चे मित्र की भाँति प्रह्लाद अपने मित्रों को सांसारिक कार्यों में समय व्यर्थ गँवाने के बजाए भगवद्कथा एवं कीर्तन करने के लिए कहते। और प्रह्लाद के मित्र उनके मध्य एवं प्रेमभरे वचनों से इतने प्रभावित हो जाते कि उनकी सलाह मानते हुए वे कीर्तन करने लगते।

आइए अपने जीवन में झाँककर देखें। बचपन की बात छोड़िए, बड़े होने के बाद भी हमें खेल खेलने अथवा देखने का आकर्षण रहता है। भारतीय क्रिकेट के पीछे तथा यूरोपीय एवं अमरीकी लोग फुटबॉल के पीछे पागल

हैं। अनेक बार हम इन खेलों में इतने मग्न हो जाते हैं कि बाह्य जगत् को भूल जाते हैं। ये खेल हमें क्षणभंगुर मज़ा अवश्य देते हैं किन्तु हमारे हृदय में असीम सुख की ललक को पूरा करने में असमर्थ रहते हैं।

प्रत्येक जीव आनन्द की खोज में है, आनन्दमयोऽभ्यसात्। हम न केवल खेलों द्वारा, अपितु फिल्में देखकर, फिल्मों के गाने सुनकर, यूट्यूब वीडियो देखकर अथवा राजनीति एवं यहाँ-वहाँ की बातें करके आनन्द लेने का प्रयास करते हैं। ये कार्य हमें कुछ समय के लिए दैनिक जीवन की बोरियत से अवश्य निकालते हैं, किन्तु हमारे हृदय को बमुश्किल कोई सच्चा सुख दे पाते हैं। हम सभी को इसका अनुभव है। किन्तु हम देखते हैं कि प्रह्लाद को केवल कृष्णभक्ति में ही सच्चा सुख मिलता था। शुद्ध भक्त श्रीकृष्ण के नामों के श्रवण-कीर्तन तथा श्रीकृष्ण के अर्चाविग्रह की पूजा में सच्चे सुख का अनुभव करते हुए अपना क्षण-प्रतिक्षण भक्ति के लिए समर्पित कर देते हैं।

श्रीमद्भागवत में प्रह्लाद जैसे महाभागवतों का वर्णन किया गया है जिससे हम अपने जीवन में उनके आदर्श का पालन कर सकें।

## 6. अभिमानशून्यता

प्रह्लाद में अभिमान का लेश भी न था। वे ब्रह्माण्डनायक के पुत्र थे, किन्तु वे एक सामान्य बालक के समान रहते। वे स्वयं को कभी दूसरों से श्रेष्ठ नहीं मानते। श्रीमद्भागवतम् 7.4.31-32 में प्रह्लाद के गुणों का वर्णन किया गया है। “सम्माननीय लोगों के साथ वे तुच्छ सेवक की भाँति व्यवहार करते, निर्धनों के प्रति पिता के समान, समान लोगों के साथ स्नेहिल भाई के समान और वे अपने शिक्षकों, गुरुजनों एवं वरिष्ठ गुरुबन्धुओं का आदर भगवान् के समान करते।” हम देखते हैं कि यद्यपि उनके पिता सदैव उनका अपमान करते और उन्हें प्रताड़ित करते, किन्तु प्रह्लाद सदैव उनके प्रति आदरभाव रखते।

## 7. साहसी प्रचारक

हिरण्यकशिपु के राज्य में कृष्णभक्ति का पालन एवं प्रचार निषिद्ध था। किन्तु प्रह्लाद एक भयहीन प्रचारक थे। यहाँ तककि देवराज इन्द्र भी हिरण्यकशिपु से भयभीत रहते, किन्तु प्रह्लाद निर्भय होकर शक्तिशाली असुर के समुख सत्य बोलते। यहाँ तककि उन्हें अपने प्राणों का भी भय नहीं था। जैसाकि हमने देखा कि विद्यालय के खाली समय में वे अपने मित्रों से खेलकूद के बजाए कृष्णभक्ति करने के लिए कहते। प्रह्लाद ने कहा कि लोग सांसारिक कार्यों में इतने व्यस्त हैं कि उनके पास भगवद्भक्ति का समय ही नहीं है। उनकी गणना के अनुसार व्यक्ति अपने जीवन का लगभग आधा समय सोने में, कुछ समय

प्रह्लाद ने हिरण्यकशिपु को समझाने का भरसक प्रयत्न किया। उन्होंने उसे बताया कि समस्त बल एकमात्र श्रीभगवान् से आता है, “राजन्, मेरे बल का जो स्रोत है वह तुम्हारे बल का भी है। वस्तुतः समस्त प्रकार का बल का वही एकमात्र स्रोत है। वे मेरे और आपके बल के ही नहीं अपितु प्रत्येक व्यक्ति के बल के स्रोत हैं। उनके बिना कोई व्यक्ति बल प्राप्त नहीं कर सकता। ब्रह्माजी सहित समस्त चर-अचर, श्रेष्ठ अथवा निम्न व्यक्ति श्रीभगवान् की शक्ति द्वारा ही नियंत्रित होता है।” (श्रीमद्भागवत 7.8.7)

हिरण्यकशिपु प्रह्लाद को मारने का पूरा प्रयास कर रहा था और प्रह्लाद उन्हें भगवद्भक्त बनाने का प्रयास कर रहे थे।

**जिस प्रकार एक बालक को सदैव विश्वास होता है कि संकट के समय उसके पिता उसकी रक्षा करेंगे, उसी प्रकार प्रह्लाद को अपने परमपिता के संरक्षण पर पूरा विश्वास था।**

बचपन की अज्ञानता में तथा कुछ कौमारावस्था की क्रीड़ा में बिता देता है। जीवन के अंतिम वर्षों में भी वह अधिक कुछ नहीं कर पाता और इस प्रकार उसके पास बहुत ही कम समय बचता है। और यदि वह इस समय का उपयोग भक्ति के लिए नहीं करता तो वह मनुष्य जीवन की बड़ी हानि मानी जायेगी।

अतः प्रह्लाद अपने मित्रों से भोगविलास में जीवन व्यर्थ न गँवाने का निवेदन करते हैं। किन्तु वे वहीं नहीं रुके। आशर्च्यजनक रूप से वे हिरण्यकशिपु को भी कृष्णभक्ति की शिक्षा देने लगते हैं। उस असुर ने कभी नहीं सोचा था कि उसका पाँच वर्षीय पुत्र उसे उसके ही शत्रु की शरणागति का उपदेश देगा। हिरण्यकशिपु को अपनी शक्ति पर बड़ा गर्व था और उसे विश्वास था कि वह अपनी शक्ति द्वारा भगवान् विष्णु का वध कर देगा।

## यशस्वी प्रह्लाद

प्रह्लाद का गुणगान करते हुए नारदमुनि कहते हैं, “हे युधिष्ठिर, जिस किसी भी सभा में संतों एवं भक्तों की चर्चा होती है, उसमें असुरों के शत्रु देवतागण भी प्रह्लाद महाराज का नाम एक महान् भक्त के रूप में लेते हैं।” (श्रीमद्भागवत 7.4.35)

प्रह्लाद अपने अद्भुत गुणों के द्वारा भगवान् के महान् भक्त बने। उन्होंने समस्त भौतिक इच्छाओं से ऊपर उठकर पूर्णतः श्रीनृसिंहदेव का आश्रय लिया, जो अपने निष्ठावान् भक्तों की रक्षा के लिए अवतरित हुए। ऐसे भक्त अत्यन्त दुर्लभ हैं।

पुरुषोत्तम निताइ दास इस्कॉन कोलकाता भक्त समुदाय के सदस्य हैं। पाठक उनके ब्लग <http://krishnamagic.blogspot.in/> पर जा सकते हैं।

# नारदमुनि

वैदिक संस्कृति के सर्वाधिक प्रख्यात् संतों में से एक का संक्षिप्त इतिहास

द्वाद्द- अमल भक्त दास

गुस्से से भरा वह साँप कुण्डली मारकर घास में छिपा था और अपनी ओर बढ़ने वाले पैरों को डंक मारने की प्रतीक्षा कर रहा था।

वे पैर थे नारद मुनि की माँ के, जो इस क्रोधित सर्प को नहीं देख पाई। वहाँ न केवल गहन अंधेरा था अपितु उसका मन गौशाला में जाने पर केंद्रित था। वहाँ उसे गाय को दोहकर दूध घर लाना था।

सर्प ने उनके पैरों को अपने निकट आते देखा और जैसे ही एक पैर उसे कुचलने वाला था, सर्प ने फुफकारते हुए अपने विषैले दाँत पैर में गड़ा दिये। तुरन्त रक्त की धारा फूट पड़ी और विष तेजी से शिकार के शरीर में फैलने लगा।

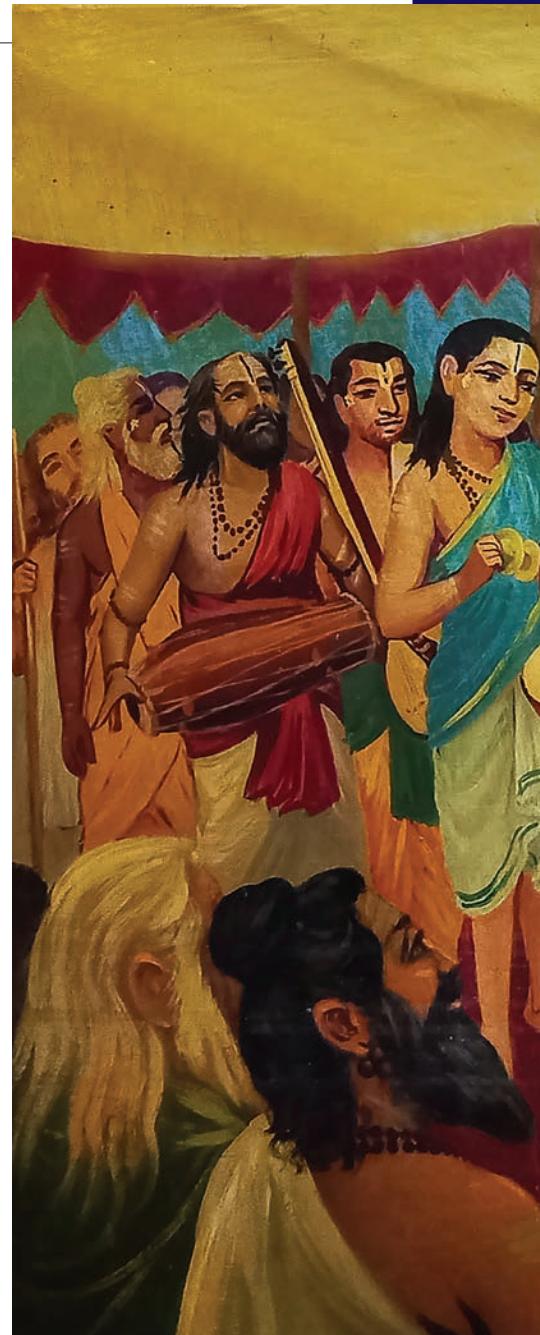
नारद की माँ चिल्हायी और भयभीत होकर देखने लगी। उसने अपने पैरों से चिपके साँप को गर्दन से पकड़कर खींचा और जितना दूर हो सका फेंक दिया और आगे चल दी।

गौशाला की ओर जाते हुए उसे अचानक शरीर में दुर्बलता और शिथिलता का अनुभव हुआ। वह लड़खड़ाती हुई अपने काँपते हुए हाथ से सिर को मलने लगी। और तब खड़ी न रह पाने के कारण वह पछाड़ खा भूमि पर गिर पड़ी। उसकी साँस भारी हो गयी और

फूलने लगी। उसने सहायता के लिए पुकार लगाने का प्रयास किया किन्तु कमज़ोर आवाज के कारण वह असफल रही। अकेलेपन, पीड़ा और स्वयं को निःसहाय अनुभव करती हुई वह जान गई कि शीघ्र ही उसकी मृत्यु निकट आने वाली है।

जब पाँच वर्ष के बालक नारद को अपनी माँ के देहत्याग का पता चला तो वह बीते दिनों को याद करने लगा। उसकी माँ एक ब्राह्मण के घर नौकरानी का काम कर नारद का पालन कर रही थी। उसे पिछले बरसात के मौसम का स्मरण हो आया, जब भगवान् विष्णु के कुछ भ्रमणकारी भक्त उस ब्राह्मण के घर आकर रहने लगे थे। ब्राह्मण ने नारद की माँ को चातुर्मास्य के उन महीनों में उन भक्तों की सेवा करने का कार्य दिया। प्रेमपूर्वक उनकी सेवा करते हुए उसने अपने पुत्र को भी उनकी सेवा में संलग्न किया। उदाहरणार्थ, नारद उनके लिए भोजन लाता और उनके निवासस्थान की साफ-सफाई करता।

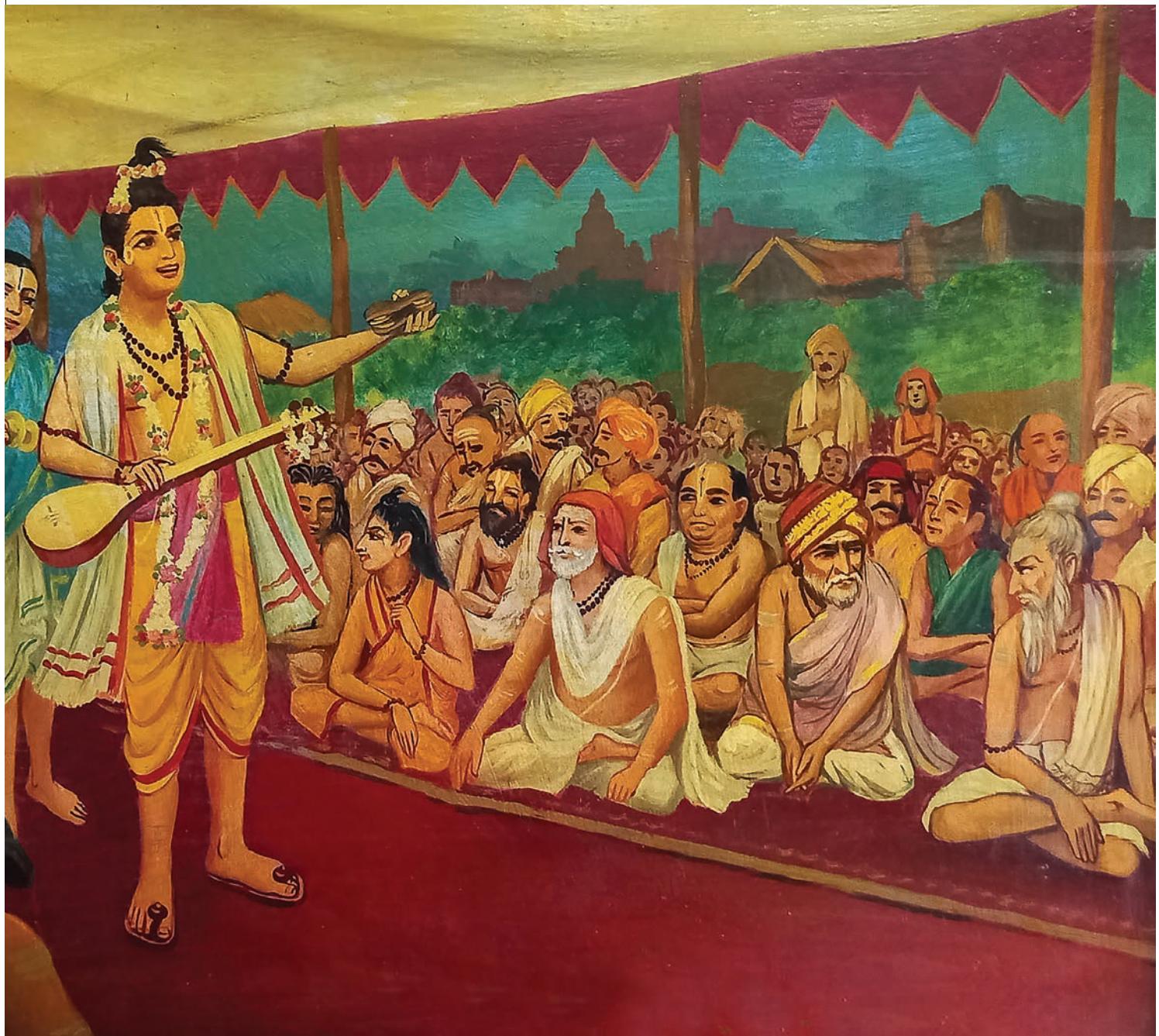
साधुओं की सेवा और उनका आशीर्वाद प्राप्त करने के परिणामस्वरूप अचानक नारद का झुकाव आध्यात्मिकता की ओर हो गया। वह आत्मनियंत्रित हो गया एवं बच्चों के साथ खेलकूद में उसकी रुचि समाप्त हो गई। सदैव शिष्ट व्यवहार



करते हुए वह केवल आवश्यक बात ही बोलता।

## प्रसाद की शक्ति

एक दिन साधुओं के भोजन के पश्चात्, उनकी थाली ले जाते समय नारद ने उनसे उनका महाप्रसाद खाने की अनुमति माँगी। उसकी शुद्ध भावना उद्देश्य को समझकर उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृति दे दी और नारद ने आनन्दपूर्वक सम्पूर्ण महाप्रसाद खा लिया।



केवल इस दिव्य सम्पर्क से नारद द्वारा पिछले जन्मों में किये गये सभी पापों के कर्मफल तत्क्षण नष्ट हो गये। वह शुद्ध हो गया और भगवान् के प्रति उसका आकर्षण विकसित हो गया। परिणामस्वरूप वह अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक साधुओं के मुख से श्रीकृष्ण की आकर्षक लीलाओं का श्रवण करने लगा। प्रत्येक कथा के साथ उसका आकर्षण बढ़ने लगा और दिन-प्रतिदिन श्रीकृष्ण की दिव्य

लीलाओं को जानने की उसकी जिज्ञासा तीव्र होने लगी। धीरे-धीरे उसे अनुभव होने लगा कि वह भौतिक शरीर या मन नहीं अपितु शाश्वत आत्मा है।

सेवा करते-करते नारद का साधुओं में दृढ़ विश्वास उत्पन्न हो गया। फलस्वरूप उन्होंने उसे दिव्य ज्ञान प्रदान किया। उसने जाना कि मूल रूप से आत्मा कहाँ से आई है, क्यों वह इस संसार में है, उसके दुःख का क्या कारण

है और किस प्रकार वह दुःखों से मुक्त हो सकती है। उसने यह भी जाना कि भगवान् के साथ उसका सम्बन्ध शाश्वत है और यद्यपि अभी वह सुस अवस्था में है भक्तियोग की विधि द्वारा उसे पुनः जागृत किया जा सकता है। उसे यह ज्ञान भी प्राप्त हुआ कि वह भी भगवान् के धामहजहाँ स्वयं भगवान् निवास एवं लीलायें करते हैं द्वारा प्रवेश कर सकता है और भगवान् से मिलकर उनकी सेवा कर

सकता है। नारद के जीवन में इससे अन्य कोई उच्च लक्ष्य नहीं रहा।

वर्षा ऋतु के समाप्त होने पर साधुओं ने नारद से विदाई ली और अपनी यात्रा पर चल दिये।

अभी नारद की माँ भी चल बसी थी, उसके सामने प्रश्न था कि अब वह क्या करे? कौन उसका पालन करेगा? यह सोचते हुए वह स्वयं को असहाय अनुभव करने लगा। यद्यपि माँ से बिछड़ने पर वह उदास था किन्तु वह जानता था कि उसकी माँ केवल इस लोक से किसी अन्य लोक में

था। उन्होंने अंधेरे और भयानक जंगल देखे जहाँ विषैले सर्प, उलू और भेड़िये मुक्त विचरण करते थे।

कुछ समय पश्चात् उन्होंने न केवल शारीरिक और मानसिक थकावट का अपितु तीव्र भूख और प्यास का भी अनुभव किया। किन्तु शीघ्र ही वे एक सरोवर के निकट पहुँचे और पानी पीकर अपनी प्यास बुझाई और तरोताजा हो गये।

आगे जाने पर नारद एक निर्जन जंगल में पहुँचे जहाँ एक वट वृक्ष के नीचे बैठकर वे ध्यान करने लगे। तब साधुओं द्वारा

अन्तःकरण से भगवान् गंभीरतापूर्वक बोले, “नारद, मुझे यह कहते हुए खेद हो रहा है कि शेष जीवनभर तुम मुझे नहीं देख पाओगे।”

“क्या!” नारद को सुनकर धक्का लगा।

“मुझे क्षमा करना।”

“लेकिन हक्कों?”

“क्योंकि अभी भी तुम्हारी भक्ति अधूरी है।”

“अधूरी?”

“हाँ। किन्तु जितनी अधिक तुम सेवा करोगे उतना ही तुम्हारा हृदय शुद्ध होगा।”

“किन्तु फिर तुमने मुझे अपने दर्शन दिये ही क्यों?”

“मेरे प्रति तुम्हारी इच्छा को तीव्र करने के लिए।”

“तीव्र करने के लिए?”

“हाँ। जितना अधिक तुम मेरा स्मरण करोगे, मेरे प्रति लालायित रहोगे, उतना अधिक तुम भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो जाओगे।”

“और जब मैं उनसे मुक्त हो जाऊँगा तो क्या तुम्हें देख पाऊँगा?”

“हाँ, सदैव हन्त्रयेक स्थान पर।”

नारद को आशा की किरण दिखाई दी।

“मेरी कृपा से तुम कभी भी मुझे नहीं भूलोगे।”

जब भगवान् ने बोलना समाप्त किया तो नारद ने शान्ति और कृतज्ञता का अनुभव करते हुए उन्हें प्रणाम किया।

## नारद का संदेश

उस समय से नारद निरन्तर भगवान् के नाम और महिमाओं का कीर्तन और स्मरण कर रहे हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि ये पद्धति कितनी प्रभावशाली है। इस प्रकार उन्होंने पूर्ण रूप से सन्तुष्ट, विनम्र और प्रसन्न हो सम्पूर्ण विश्व की अपनी यात्रा जारी की। जीवन के अन्त में वे सभी भौतिक इच्छाओं और कर्म से मुक्त हो गये। तब भगवान् ने उन्हें ऐसा दिव्य शरीर प्रदान किया जो शाश्वत

## नारद निरन्तर भगवान् के नाम और महिमाओं का कीर्तन और स्मरण कर रहे हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि ये पद्धति कितनी प्रभावशाली है।

ये पद्धति कितनी प्रभावशाली है।

गई है और वह यह भी जानता था कि भगवान् उसकी माँ का अच्छी तरह ध्यान रखेंगे। वह समझ गया कि इतनी छोटी आयु में माँ का देहान्त भगवान् की विशेष कृपा है क्योंकि अभी उसे पूर्ण रूप से भगवान् के निर्देशन और सहायता पर अवलम्बित रहना होगा। और क्योंकि उसे भगवान् पर पूर्ण श्रद्धा थी, उसने ब्राह्मण का घर त्याग दिया। पूरी तरह अकेला और भ्रमणकारी भक्तहृत्वन साधुओं के समान जिन्होंने उसे दीक्षा दी थीहृबनने के लिए दृढ़ उसने उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया।

## हृदय में भगवान् के दर्शन

नारद अनेक शहरों, नगरों, कस्बों, गाँवों, घाटियों, खेत-खलिहानों, बगीचों और प्राकृतिक वनों से होकर गुजरे। उन्होंने सोने, चाँदी और ताँबे से पूरित पर्वतों और साथ ही साथ आकर्षक कमल पुष्पों से भेरे सुन्दर सरोवर देखे जो स्वर्ग निवासियों के योग्य थे। वे विभिन्न प्रकार के ऐसे भयानक जंगलों से गुजरे जो उनके लिए अकेले पार करना कठिन

सिखाई गई विधि द्वारा उन्होंने अपने हृदय में स्थित परमात्मा पर ध्यान केंद्रित किया। भगवान् के चरणकमलों पर अपना मन एकाग्रत्वात् करने से उनका हृदय दिव्य प्रेम से भर गया और उनके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे।

नारद अपने हृदय में भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करने लगे और उनकी दृष्टि अकल्पनीय आनन्द से भर गई। उनके शरीर के प्रत्येक अंग में रोमाञ्च हो गया और वे भावविभोर हो उठे। यहाँ तक कि नारद इतने आनन्दित हो उठे कि वे अधिक समय तक भगवान् का दर्शन नहीं कर पाये। किन्तु फिर भी वे उन्हें देखना चाहते थे क्योंकि भगवान् के दर्शन से उन्हें पूर्ण संतुष्टि प्राप्त हो रही थी। भगवान् के अदृश्य होने पर नारद ने दृढ़तापूर्वक अपने हृदय पर ध्यान केंद्रित कर बार-बार उनके दिव्य रूप को देखने का प्रयास किया। किन्तु कठिन प्रयास करने पर भी वे विफल रहे। इससे उन्हें अत्यन्त निराशा और दुःख हुआ।

बालक के दुःख को देख, अचानक

ज्ञान और आनन्द से पूर्ण था और जिसके द्वारा भगवान् का दर्शन कर पाना सम्भव था।

अनेक वर्षों पश्चात्, ब्रह्माजी के दिन की समाप्ति पर (43 करोड़ 20 लाख वर्ष पश्चात्) प्रलय हुई। उस समय ब्रह्माजी के साथ नारदमुनि भी परम भगवान् के शरीर में प्रविष्ट हुए और दिव्य चेतना में रहने लगे। ब्रह्माजी की रात्रि समाप्त होने पर (43 करोड़ 20 लाख वर्ष पश्चात्) वे उठे और एक बार फिर सृष्टि की रचना की। तब नारदमुनि उसी दिव्य शरीर के साथ ब्रह्माजी के शरीर से प्रकट हुए जिसमें वे भगवान् के शरीर में प्रविष्ट हुए थे। तब से भगवान् विष्णु की कृपा

से नारदमुनि निर्बाध रूप से समस्त भौतिक और आध्यात्मिक लोकों में भ्रमण कर उनकी भक्ति कर रहे हैं।

नारदमुनि जहाँ कहीं भी भ्रमण करते हैं, अपनी वीणा पर भक्तिमय संगीत द्वारा भगवान् की महिमाओं का गुणगान करते रहते हैं। ये सुन्दर वाद्ययंत्र स्वयं भगवान् ने उन्हें प्रदान किया है। जैसे ही नारदमुनि मधुर संगीत द्वारा भगवान् की दिव्य लीलाओं का गुणगान करते हैं, भगवान् श्रीकृष्ण तुरन्त उनके हृदय में हृद्भैसे उनके लिए सम्मन जारी किया गया होहक्रक्त हो जाते हैं।

सभी के लिए नारदमुनि का एक ही संदेश है “आप परम भगवान् की दिव्य लीलाओं

की श्रवण-कीर्तन रूपी नौका का सहारा लेकर भौतिक इच्छाओं, चिन्ताओं और कष्टों के अगाध समुद्र को पार कर सकते हैं। और ये लीलाएँ शुद्ध भगवद्प्रेम और पूर्ण आनन्द और सन्तुष्टि प्रदान कर सकतर हैं। इन्हें प्राप्त कर आपको किसी अन्य वस्तु की अभिलाषा नहीं रहेगी।”

इस प्रकार नारदमुनि ने न केवल निरन्तर भगवान् के दर्शन करते हुए अपने आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त किया, अपितु अपनी शिक्षाओं और उदाहरण द्वारा वे हम सभी को उस लक्ष्य को प्राप्त करने में मार्गनिर्देशन कर रहे हैं।

## ज्ञानबिन्दु

**भक्ति, भक्ति और एकमात्र भक्ति** ही सबसे बड़ी सम्पत्ति है। और भक्ति का अर्थ क्या है? श्रीकृष्ण के नामों का स्मरण करते हुए निरन्तर रोना, यही भक्ति है।

- चैतन्य भागवत (मध्यखण्ड, 24वाँ अध्याय)

जो व्यक्ति भगवद्-इच्छा से प्राप्त होने वाले लाभ से सन्तुष्ट रहता है, जो द्वन्द्वों से परे और द्वेष से मुक्त है, जो सफलता और असफलता दोनों में सम्भाव रहता है, ऐसा व्यक्ति कर्म करते हुए भी कभी बँधता नहीं है।’

- गीता 4.22

जब भगवान् किसी कार्य की व्यवस्था करते हैं तो हमें उससे विचलित नहीं होना चाहिए, चाहे हमारी गणना के अनुसार वह कार्य बिल्कुल उल्टा ही क्यों न हो।

- श्रील प्रभुपाद, भागवत 3.16.37, तात्पर्य

भगवान् को अपने रूप से भी अधिक अपना नाम प्रिय है, जिसके माध्यम से सम्पूर्ण जगत् का सरलतापूर्वक उद्धार किया जा सकता है। वस्तुतः भगवान् के नाम के समान अन्य कुछ भी इतना अमृतमय नहीं है।

- विष्णु पार्षद, श्रीबृहद्भागवतामृत (भाग 2) 3.184

“मन्त्रों के उच्चारण तथा कर्मकाण्ड करने में त्रुटियाँ हो सकती हैं। देश, काल, व्यक्ति तथा सामग्री के विषय में भी त्रुटियाँ हो सकती हैं। किन्तु यदि आपके (श्रीकृष्ण के) नाम का कीर्तन हो तो प्रत्येक वस्तु त्रुटिहीन बन जाती है।”

- श्रीमद्भागवतम् 8.23.16

गंगा मैया की पूजा गंगाजल से ही होती है – एक भक्त गंगा से थोड़ा जल लेता है और पुनः गंगा को ही अर्पित कर देता है। जब भक्त जल लेता है तो गंगा मैया का कुछ नुकसान नहीं होता और जब वह पुनः गंगा को जल अर्पित करता है तो गंगा मैया में कुछ बढ़ोतरी भी नहीं होती, किन्तु ऐसा करने से गंगा की पूजा करने वाला लाभान्वित होता है। इसी प्रकार भगवान् का भक्त भगवान् को भक्तिपूर्वक पत्रं पुष्पं फलं तोयं (भगवद्गीता 9.26) – एक पत्ता, फूल, फल या जल – अर्पित करता है। किन्तु पत्ता, फूल, फल और जल सहित सभी वस्तुएँ भगवान् की हैं और इसलिए कुछ त्यागने या स्वीकारने का प्रश्न ही नहीं है। हमें भक्ति का लाभ उठाने का प्रयास करना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से व्यक्ति का कुछ नुकसान नहीं होता, अपितु वह परम भगवान् की कृपा प्राप्त करता है।

- श्रीमद्भागवतम् 9.9.13

# जिसमें प्राण होते हैं, वह प्रचार करता है

मैराथन के दौरान एक दिन मैं एक कसाईघर में गया। पहरेदार से बचता-बचाता मैं भीतर पहुँचा और अत्यन्त बीभत्स दृश्य देखा - चारों ओर मृत गाएँ, बछड़े और रक्त था (फर्श, दीवारों, दरवाजों, सब जगह), और केवल युक्रेन का एक व्यक्ति अकेला सफाई कर रहा था। मैंने ऐसा दृश्य पहले कभी नहीं देखा था। मुझे बहुत बुरा लगा और क्रोध भी आया, और मैं वहाँ किसी जिम्मेदार व्यक्ति को खोजने लगा।

देखा जाये तो हम कुछ अधिक नहीं कर सकते थे, परन्तु मुझे बड़ी दया आयी और मैं चाहता था कि ये गोहत्यारे भी पुस्तक खरीदें। अनेक खाली कमरों से गुजरने तथा अनेक दरवाजे खटखटाने के बाद मैं इसी निष्कर्ष पर आया कि दोपहर होने के कारण यहाँ कोई भी नहीं है। थोड़ा निराश होकर मैं दरवाजे खटखटाता रहा। तभी एक दरवाजे से पजामा पहने एक व्यक्ति आया और मुझ अनजान को वहाँ देखकर अचम्भित हो गया। प्रसन्नतापूर्वक उसे पुस्तकें दिखाते हुए मैं उसे कृष्णभावनामृत के ज्ञान से सम्बन्धित अनेक बातें बताने लगा। हाँ, मैंने उसे शाकाहार के विषय में नहीं बताया। वह मुझे कमरे के भीतर ले आया और मुझे पता चला कि वह कसाईघर का प्रमुख व्यवस्थापक है। पुस्तकों के प्रति मेरा उत्साह देखकर वह भी जोश से भर उठा और अन्ततः उसने श्रीमद्भागवतम् के स्कन्ध तथा पाँच अन्य पुस्तकें लीं। वस्तुतः उसने शाकाहारी रसोई की पुस्तक छोड़कर मेरी सभी पुस्तकें ले ली। किन्तु समस्या यह उठी कि उसके पास पर्याप्त पैसे नहीं थे। मैंने उसे कसाईघर के कार्यालय से पैसे लेकर देने की सलाह दी और उसने वह किया भी! कुल मिलाकर उसने बारह पुस्तकें ली और कसाईघर निधि से उनका भुगतान किया। -अच्युत गोत्र दास

हमारा कार्य प्रचार है। पूरे जगत् को महाप्रभु के संदेश से भर दो। हम गोष्ठ्यानन्दी हैं, भजनानन्दी नहीं। भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ने एक बार कहा था, प्राण आछे यारं, सेइ हेतु प्रचार - “जिसमें प्राण होते हैं, वह प्रचार करता है।” जीवों की पीड़ाओं को देखकर प्रचारक के हृदय से रक्त बहता है। इसलिए वह अपनी चिन्ता किये बिना बाहर जाता है और प्रचार करता है! लोगों में कृष्णभावना की स्थापना करता है। यही विचार करता है कि लोगों के दुःख सदा के लिए दूर हो जायें। हाँ, यही एक साधु का हृदय है। भक्तिविनोद ठाकुर अपने अंतिम दिनों में इतने बृद्ध हो गये कि उन्हें कुछ दिखाने के लिए किसी को उनकी आँखों पर गिरी पलकों को उठाना पड़ता था। उस समय उन्होंने कहा

था, “मुझे एक घोड़ा चाहिए जिसके ऊपर चढ़कर मैं प्रचार के लिए जाना चाहता हूँ।” वे बहुत बृद्ध और अशक्त हो गये थे, परन्तु उन्हें ऐसा उत्साह था। कृष्णभावना के अभाव में पीड़ित लोगों का हृदय देखकर प्रचारक का हृदय विदीर्ण हो उठता है - “अहो, यह श्रीकृष्ण का दास है, किन्तु अज्ञानतावश दुःख भोग रहा है। ये भगवान् का भजन नहीं करता। मैं जाकर इसे कृष्णभावना का ज्ञान देता हूँ। मैं उसे भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा में नियुक्त करता हूँ।” जो व्यक्ति प्रचार नहीं करता, उसमें प्राण हैं ही नहीं। वह मृत शरीर है। जो भक्त बाहर जाकर प्रचार करते हैं वे मृत शरीर नहीं हैं। उनमें प्राण होते हैं। - प.पू. गौर गोविन्द स्वामी

• • •  
मैं एक अत्यन्त उत्कृष्ट याच कल्ब में गया और जब मैं बाहर आ रहा था, दाढ़ी वाला एक युवक मेरे पास आया। उसने तेल से सनी टी-शर्ट और पैंट पहनी थी। अपना परिचय देते समय मैंने ध्यान दिया कि उसका मन बहुत विचलित था। यद्यपि मैं उससे बातें कर रहा था और मैंने उसे श्रील प्रभुपाद की पुस्तकें दिखायीं, परन्तु उनमें उसकी कोई रुचि नहीं थी। मैंने उससे कहा, “लगता है तुम किसी तनाव में हो।”

“क्या कहूँ? मेरे ऊपर बहुत सारा कर्ज है और मेरे मन में भी बहुत बातें घूम रही हैं।”

मैंने कहा, “चिन्ता न करो। समझने का प्रयास करो कि सबकुछ भौतिक अस्थाई है। यदि तुम समझ जाओ कि कोई वस्तु सनातन है तो तुम इस चिन्ता और तनाव से मुक्त हो सकते हो। मैं तुमसे प्रेम करता हूँ और मुझे तुम्हारे ऊपर दया आ रही है। आजकल लोगों की भौतिकवादी जीवनशैली ही उनके एकाकी तथा स्वार्थी जीवन का परिणाम है। जब एक व्यक्ति दूसरे से कहता है कि ‘मैं तुमसे प्रेम करता हूँ’ तो तुम्हें नहीं लगता कि यह कितनी सुन्दर बात है?”

स्वीकार करते हुए उसने अपना सिर हिलाया और उसके चेहरे से चिन्ता गायब हो गयी। मैंने जोर से उसे गले लगाया और उसे श्रील प्रभुपाद की एक पुस्तक दी। उसने मेरे हाथों में चार रैंड थमाते हुए कहा कि उसके पास अधिक उसके पैसे नहीं हैं। मैंने धन्यवाद देते हुए कहा, “तुम्हारे पैसों का उतना महत्व नहीं है जितना भगवान् के प्रति तुम्हारी भक्ति का महत्व है।”

-मधुमंगल दास (द.अफ्रीका)

# फ्रॉस तो आज भी है, नेपोलियन कहाँ है?

यह वार्ता श्री श्रीमद् ए.सी.भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद और संयुक्त राष्ट्र संघ के एक भूतपूर्व कार्यकर्ता श्रीमान् पी.शर्मा के बीच 1974 पेरिस में हुई।

**श्रील प्रभुपाद** - मान लीजिए मैं संयुक्त राष्ट्र संघ से पूछूँ कि इस सृष्टि के पीछे क्या उद्देश्य है। मेरा जन्म एक मनुष्य के रूप में हुआ, किसी अन्य का हाथी के रूप में तथा किसी और का चींटी के रूप में। भला ऐसा क्यों? सूर्य समय पर उगता है, चाँद समय पर उगता है, सब ऋतुएँ आजा रही हैं। इन सबके पीछे उद्देश्य क्या है?

**श्रीमान् शर्मा** - मुझे लगता है कि वे इसका कोई उत्तर नहीं दे पायेंगे।

**श्रील प्रभुपाद** - इसका अर्थ है कि अपनी तथाकथित शिक्षा के बावजूद भी लोग जड़ और मूर्ख ही हैं।

**श्रीमान् शर्मा** - हाँ, बिल्कुल। आजकल शिक्षा का अर्थ केवल किताबी ज्ञान रह गया है।

**श्रील प्रभुपाद** - श्रीमद्भागवतम् में ऐसे तथाकथित ज्ञान को समय की व्यर्थता कहा गया है। हो सकता है कि कोई व्यक्ति अपने कर्तव्यों का अच्छी तरह पालन कर रहा हो, परन्तु यदि उसे इस सृष्टि के उद्देश्य का ही ज्ञान नहीं है, यदि वह अपनी कृष्णभावना को जागृत नहीं कर पाता है तो उसने जो

कुछ भी किया है वह समय की व्यर्थता है। तो हम यह कहना चाहते हैं कि संयुक्त राष्ट्र केवल समय की व्यर्थता है।

व्यवहारिक दृष्टिकोण से भी देखा जाये तो उन्होंने कुछ हासिल नहीं किया है। इसकी स्थापना युद्ध रोकने के लिए हुई थी। परन्तु उसके बाद भी कितने युद्ध हुए हैं और वे उन्हें रोक नहीं पाये। वे स्वयं को संयुक्त राष्ट्र कहते हैं परन्तु वे अधिकाधिक असंयुक्त अर्थात् टूटते जा रहे हैं। भगवद्गीता (5.29) के अनुसार यदि वे वास्तव में शान्ति चाहते हैं तो उन्हें यह समझना ही होगा कि भगवान् श्रीकृष्ण ही परम भोक्ता हैं, वे ही प्रत्येक वस्तु के परम स्वामी हैं (सर्वलोक महेश्वरम्) और वे प्रत्येक प्राणी के मित्र हैं (सुहृदं सर्वभूतानाम्)। केवल इसे समझ कर ही वे शान्ति प्राप्त कर सकते हैं। यह श्रीकृष्ण का मत है। अन्यथा आप बड़े-बड़े कार्यालयों में बड़े-बड़े सम्मेलन बुलाइये, कोई भी सफल नहीं होगा।

**श्रीमान् शर्मा** – इसका अर्थ है कि प्रत्येक वस्तु भगवान् की है। वे इस सत्य को नकारना चाहते हैं।

**श्रील प्रभुपाद** – और यही उनकी मूर्खता है। संयुक्त राष्ट्र केवल धोखा देने वालों और धोखा खाने वालों का संघ है। कोई धोखा देना चाहता है और कोई धोखा खाना चाहता है। यह हमारा मत है। तो धोखेबाजों का संघ किस प्रकार मनुष्य समाज को कोई हित कर सकता है? वे धोखेबाज हैं। शान्ति कैसे प्राप्त की जाये उन्हें इसका बिल्कुल ज्ञान नहीं है, परन्तु वे शान्ति स्थापना की बड़ी-बड़ी ढाँगे हाँक रहे हैं।

**श्रीमान् शर्मा** – खैर, बहुत सारे लोग यही कहेंगे कि आपकी बातों का क्या प्रमाण है?

**श्रील प्रभुपाद** – क्यों क्या हमारी बातें तर्कयुक्त नहीं हैं? इस कर्म में रखी प्रत्येक वस्तु का निर्माण किया गया है। क्यों ऐसा है न?

**श्रीमान् शर्मा** – बिल्कुल।

**श्रील प्रभुपाद** – यह मेज बनायी गयी है, बिजली बनायी गयी है – किसी न किसी व्यक्ति ने इन सबका निर्माण किया है। तो आप इस सत्य को कैसे नकार सकते हो कि इस सृष्टि का निर्माण भी किसी व्यक्ति ने किया है? यदि आप कहते हैं कि यह अपने-आप टपक पड़ा है तो वह मूर्खता है। किसी ने तो बनाया है। परन्तु वह व्यक्ति कौन है? हमने तो नहीं बनाया है। इसलिए हम कह सकते हैं कि किसी और ने अवश्य बनाया है। और तब हमें उस व्यक्ति की खोज करनी चाहिए। कौन है वह निर्माता और स्वामी। क्या मैं इन सबका स्वामी हूँ अथवा जिसने इनका निर्माण किया है वह स्वामी है?

**श्रीमान् शर्मा** – निश्चित ही निर्माता स्वामी है।

**श्रील प्रभुपाद** – फिर हम क्यों दावा करते हैं “यह मेरा देश है”?

**श्रीमान् शर्मा** – आपके कहने का अर्थ है कि यह अमरीका

अमरीकियों का नहीं है?

**श्रील प्रभुपाद** – हाँ। यह इनका नहीं है। फिर भी ये इतने बदमाश हैं कि दावा कर रहे हैं, “यह मेरा है। यह मेरा झण्डा है।” इसलिए ये सब धोखेबाज हैं। और ये आपस में मिलकर दूसरों को भी धोखा देने का प्रयास कर रहे हैं। अमरीकी सोच रहे हैं, “रुसियों को कैसे धोखा दिया जाये?” और रुसी सोच रहे हैं, “अमरीकियों को कैसे धोखा दिया जाये?” क्या यह सभ्यता है? कि आप धोखेबाज बनकर इन तथाकथित सम्मेलनों में समय बर्बाद करें? क्या यह सभ्यता है?

**श्रीमान् शर्मा** – नहीं, बिल्कुल नहीं।

**श्रील प्रभुपाद** – अमरीका में उन्होंने लाल भारतीयों को धोखा दिया। उनसे भूमि छीनकर वे अब दावा ठोक रहे हैं, “यह हमारी है।” परन्तु आपको कहाँ से मिली है यह भूमि? आपने लाल भारतीयों को धोखा दिया और अब अपना दावा कर रहे हो। पूरी दुनिया में यही चल रहा है। नेपोलियन सोचता था, “फ्राँस मेरा है।” फ्राँस तो आज भी वहीं है, परन्तु नेपोलियन कहाँ है? कहाँ रह रहे हैं अभी वे? फ्राँस में, नरक में या स्वर्ग में? असंख्य लोक हैं और असंख्य प्रकार के जीवन हैं। अपने वर्तमान जीवन में हो सकता है कि मैं एक राष्ट्रवादी हूँ, जैसे, नेपोलियन अथवा महात्मा गांधी, या संयुक्त राष्ट्र के लिए कार्यरत कोई व्यक्ति। परन्तु जैसे ही मेरा यह शरीर समाप्त हो जायेगा, मुझे एक अन्य शरीर प्राप्त होगा। और इस प्रकार मेरे पिछले जीवन के सारे कार्य व्यर्थ बन जायेंगे।

**श्रीमान् शर्मा** – अच्छा, ऐसा होता है?

**श्रील प्रभुपाद** – हाँ, सबकुछ व्यर्थ रह जायेगा। ये लोग व्यर्थ ही अपना समय गँवा रहे हैं। ये लोग बातें बहुत करते हैं, परन्तु इनके पास पूर्ण ज्ञान नहीं है। और इन्हें प्रगतिशील माना जा रहा है। इन्हें मालूम होना चाहिए कि जीवन का क्या उद्देश्य है और इस सृष्टि के साथ हमारा क्या सम्बन्ध है। तो कोई-न-कोई स्रष्टा अवश्य होना चाहिए। कौन है वह? उसके साथ मेरा क्या सम्बन्ध है? परन्तु ये लोग इन विषयों की उपेक्षा कर रहे हैं और फिर भी विश्वनेता बने घूमते हैं।

**श्रीमान् शर्मा** – ऐसी सरकार सबसे घटिया होती है। लगता है आपने जो कहा सही कहा है। प्रत्येक राष्ट्र स्वार्थी तथा आत्मकेन्द्रित है।

**श्रील प्रभुपाद** – परन्तु यदि मनुष्य चाहे तो वह इस मोह से बाहर आ सकता है। इस संदर्भ में वैदिक शास्त्रों में पर्याप्त ज्ञान दिया गया है। तो ये लोग उस ज्ञान का लाभ लेकर क्यों अपने जीवन को सफल नहीं बनाते? मैं यही प्रस्ताव लाया हूँ। हम मात्र इस उद्देश्य के लिए कृष्णभावना का प्रसार करने का प्रयास कर रहे हैं। ये लोग इस मुख्य बात को छोड़कर व्यर्थ के कार्यों में अपना जीवन गँवा रहे हैं। और हम उन्हें बचाने का प्रयास कर रहे हैं। यही हमारा कृष्णभावनामृत आनंदोलन है।

# श्रीभगवान् ने कहा

(भगवद्गीता कथारूप)

भाग - 245

- जितामित्र दास



यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।  
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥  
अर्थात् ‘जो मुझे सर्वत्र देखता है और सब कुछ मुझमें देखता है, उसके लिये न तो मैं कभी अदृश्य होता हूँ और न वह मेरे लिये अदृश्य होता है।’ (भगवद्गीता 6.30)

## पिछले श्लोक से सम्बन्ध

पिछले श्लोक में श्रीकृष्ण ने कहा था कि योगी तभी योगयुक्त माना जाता है, जिस समय वह श्रीकृष्ण को सभी प्राणियों में तथा सभी प्राणियों को श्रीकृष्ण में देखता है। उस समय अर्जुन के मन में प्रश्न उठा कि ऐसी स्थिति में श्रीकृष्ण उसके साथ किस प्रकार आदान-प्रदान करते हैं? अन्तर्यामी होने के कारण श्रीकृष्ण अर्जुन के प्रश्न को समझ गये। अतः उन्होंने इस श्लोक में बतलाया है कि उस योगी के लिये श्रीकृष्ण कभी दूर नहीं होते हैं तथा वह भी श्रीकृष्ण से दूर नहीं होता है। इस श्लोक में श्रीकृष्ण की तीन अत्यन्त महत्वपूर्ण शिक्षाएँ हैं, जिनकी हम क्रमपूर्वक चर्चा करेंगे।

1. जो मुझे सर्वत्र देखता है तथा सभी को मुझमें देखता है  
श्लोक की प्रथम पंक्ति के शब्द हैं- यो माम्

पश्यति सर्वत्र सर्वम् च मयि पश्यति । अर्थात् जो योगी मुझे सर्वत्र देखता है तथा सभी को मुझमें देखता है।

**श्रीकृष्ण ने यह बात पिछले श्लोक की ही दोहरायी है** - श्रीकृष्ण ने पिछले श्लोक में जो बात कही थी, उसी बात को वे इस श्लोक की प्रथम पंक्ति में दोहरा रहे हैं। पिछले श्लोक में श्रीकृष्ण ने योगयुक्त व्यक्ति के लक्षण बतलाये थे तथा इस श्लोक में श्रीकृष्ण उसी व्यक्ति के सम्बन्ध में आगे की बात बतलाना चाहते हैं, इसलिये श्रीकृष्ण इस श्लोक की प्रथम पंक्ति में यो अर्थात् जो व्यक्ति ऐसा है, इस प्रकार कह कर याद दिला रहे हैं कि वे आगे की बात उसी व्यक्ति के विषय में बोल रहे हैं, जिसका वर्णन श्रीकृष्ण ने पिछले श्लोक में किया है।

**यहाँ पर श्रीकृष्ण माम् तथा मयि, इन शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं** - पिछले श्लोक में श्रीकृष्ण ने इन शब्दों का प्रयोग किया था- सर्वभूतस्थम् आत्मानम्। अर्थात् योगयुक्त व्यक्ति आत्मा को समस्त प्राणियों में स्थित देखता है। परन्तु अब श्रीकृष्ण उसी बात को इन शब्दों में कह रहे हैं- यो माम् पश्यति सर्वत्र। अर्थात् जो व्यक्ति मुझे सर्वत्र देखता है। यह समझने की बात है कि पिछले श्लोक में श्रीकृष्ण ने समस्त प्राणियों

में स्थित आत्मा की बात कही थी तथा इस श्लोक में श्रीकृष्ण ने सर्वत्र स्थित स्वयं के होने की बात कही है। संस्कृत में यदि कहा जाये तो पिछले श्लोक में श्रीकृष्ण ने जहाँ आत्मानम् शब्द का प्रयोग किया था, वहाँ इस श्लोक में श्रीकृष्ण ने माम् शब्द का प्रयोग किया है। इससे पता चलता है कि पिछले श्लोक में श्रीकृष्ण ने जिस आत्मा शब्द का प्रयोग किया था, उस आत्मा शब्द का अर्थ श्रीकृष्ण ही हैं, अन्य कुछ नहीं है। यदि हम सोचते हैं कि पिछले श्लोक में प्रयुक्त आत्मा शब्द का श्रीकृष्ण के अतिरिक्त कुछ अन्य अर्थ है तो यह बिल्कुल गलत है। इसी प्रकार पिछले श्लोक में इन शब्दों का प्रयोग हुआ था- सर्वभूतानि च आत्मनि। अर्थात् योगयुक्त व्यक्ति आत्मा में समस्त प्राणियों को स्थित देखता है। परन्तु अब श्रीकृष्ण उसी बात को इन शब्दों में कह रहे हैं- सर्वम् च मयि पश्यति। अर्थात् जो व्यक्ति सभी को मुझमें स्थित देखता है। पिछले श्लोक में श्रीकृष्ण ने आत्मनि शब्द का प्रयोग किया था, जिसका अर्थ है, आत्मा में तथा इस श्लोक में श्रीकृष्ण मयि शब्द का प्रयोग कर रहे हैं, जिसका अर्थ है, मुझमें अर्थात् श्रीकृष्ण में। इस प्रकार यह बात अच्छी प्रकार से निश्चित होती है कि पिछले श्लोक में श्रीकृष्ण ने

आत्मा के सम्बन्ध में जो दो बातें कही थीं, वे बातें वास्तव में श्रीकृष्ण के ही लिये हैं।

**भक्त श्रीकृष्ण को सर्वत्र दृढ़ता है -** यद्यपि पिछले श्लोक में इस बात की व्याख्या की जा चुकी है, परन्तु अब हम इस बात की व्याख्या अन्य प्रकार से करेंगे। यहाँ पर श्रीकृष्ण कह रहे हैं कि भक्त श्रीकृष्ण को सर्वत्र देखता है। इसका अर्थ यह भी है कि भक्त श्रीकृष्ण को सर्वत्र दृढ़ता है। उदाहरण के लिये यदि हमारी चाबी खो जाती है तो हम कहते हैं कि मैं अपनी चाबी को सब जगह देख रहा हूँ, परन्तु वह मुझे नहीं मिल रही है। मैंने अपने पूरे कमरे में चाबी को देखा, परन्तु मझे चाबी नहीं मिली।

## भक्त के लिये श्रीकृष्ण ही सब कुछ हैं। श्रीकृष्ण के बिना भक्त को सब कुछ शून्य ही दिखायी देता है।

उसी प्रकार भक्त श्रीकृष्ण के विरह में श्रीकृष्ण को सर्वत्र दृढ़ता है, अर्थात् वह श्रीकृष्ण को सर्वत्र देखता है, परन्तु उसे श्रीकृष्ण का दर्शन नहीं होता है। यह भक्ति की अत्यन्त ऊँची अवस्था है कि वह श्रीकृष्ण के विरह का अनुभव करता है।

**महाराज परीक्षित प्रत्येक व्यक्ति में श्रीकृष्ण को दृढ़ते थे -** भागवत (1.12.30) में बताया गया है कि परीक्षित महाराज ने चूँकि गर्भ की अवस्था में श्रीकृष्ण का दर्शन किया था। उस समय वह बालक सोचता था कि ये कौन हैं? फिर जिस समय इस बालक का जन्म हुआ, उस समय यह बालक रोता नहीं था, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति के चेहरे को ध्यान से देखता था कि जिन श्रीकृष्ण को उसने गर्भ में देखा था, वे श्रीकृष्ण कहाँ हैं। इस प्रकार यह बालक श्रीकृष्ण को सर्वत्र देखता था, अर्थात् श्रीकृष्ण को सर्वत्र दृढ़ता था।

**भक्त अपना सब कुछ श्रीकृष्ण में ही देखता है -** यहाँ पर श्रीकृष्ण कह रहे हैं- सर्वम् च मयि पश्यति। अर्थात् भक्त श्रीकृष्ण को सभी में देखता है। यद्यपि इस बात की व्याख्या पिछले श्लोक में हो चुकी है परन्तु अब हम इस बात की व्याख्या अन्य प्रकार से करेंगे। सर्वम् शब्द का सामान्य अर्थ है- सभी में। परन्तु सर्वम् शब्द का एक अन्य अर्थ यह भी है- सब कुछ अर्थात् अपना सर्वस्व। इस प्रकार सर्वम् शब्द का अन्य अर्थ हुआ- अपना सब कुछ या अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति। तो श्रीकृष्ण यहाँ पर कह रहे हैं कि योगी अपना सब कुछ अथवा अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति श्रीकृष्ण में ही देखता

लय (आत्मविनाश) है। भक्त कभी भी ऐसी विपदा नहीं उठाता। ब्रह्म संहिता (5.38) में कहा गया है- 'मैं आदिपुरुष भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जिनका दर्शन भक्तगण प्रेमरूपी अजन लगे नेत्रों से करते हैं। वे भक्त के हृदय में स्थित श्यामसुन्दर रूप में देखे जाते हैं।' इस अवस्था में न तो भगवान् कृष्ण अपने भक्त की दृष्टि से ओङ्गल होते हैं और न भक्त ही उनकी दृष्टि से ओङ्गल हो पाते हैं। यही बात योगी के लिये भी सत्य है, क्योंकि वह अपने हृदय के भीतर परमात्मारूप में भगवान् का दर्शन करता रहता है। ऐसा योगी शुद्ध भक्त बन जाता है और अपने अन्दर भगवान् को देखे बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता।'

**श्रीकृष्ण अपने भक्त को अपने से दूर नहीं करते हैं -** यहाँ पर श्रीकृष्ण कह रहे हैं कि वे अपने भक्त से दूर नहीं होते हैं। इसका अर्थ यह भी है कि वे अपने भक्त को अपने से दूर नहीं करते हैं। चैतन्य भागवत, मध्य लीला के अध्याय संख्या 10 में श्रील मुरारी गुप्त श्रीचैतन्य से प्रार्थना करते हैं- 'हे प्रभु! जहाँ कहीं भी मेरा जन्म हो, वहाँ-वहाँ आपकी स्मृति बनी रहे। जो सब आपके दास हैं, मेरा उन सबके साथ जन्म-जन्म में वास हो। आप प्रभु और मैं दास, जहाँ यह भाव न हो, वहाँ मुझको नहीं पटक देना।' इस प्रकार श्रील मुरारी गुप्त ने श्रीचैतन्य से प्रार्थना की। उनकी इस प्रार्थना के उत्तर में श्रीचैतन्य ने उन्हें यही वर दिया।

**श्रीकृष्ण अपने भक्त की सम्पत्ति बन जाते हैं -** इस सम्बन्ध में श्रील प्रभुपाद योगपथ नामक पुस्तक में लिखते हैं- 'यदि हम इस तरह रहने का अभ्यास करते हैं तो हम श्रीकृष्ण को कभी नहीं खोते और श्रीकृष्ण से कभी दूर नहीं होते। मृत्यु के समय श्रीकृष्ण के पास हमारा जाना निश्चित हो जाता है। यदि हम श्रीकृष्ण से विलग नहीं होते हैं तो श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और कहाँ जायेंगे?

है। भक्त अपना सम्पूर्ण सुख श्रीकृष्ण में ही देखता है।

शिक्षाष्टकम् के ७वें श्लोक में श्रीचैतन्य कहते हैं कि हे गोविन्द! आपके बिना यह सम्पूर्ण जगत् मुझे शून्य दिखायी देता है। इसका अर्थ है कि भक्त के लिये श्रीकृष्ण ही सब कुछ है। श्रीकृष्ण के बिना भक्त को सब कुछ शून्य ही दिखायी देता है।

**2. उसके लिये मैं दूर नहीं होता हूँ**  
श्लोक की दूसरी पंक्ति के शब्द हैं- तस्य अहम् न प्रणश्यामि। अर्थात् उस योगी के लिये मैं दूर नहीं होता हूँ। इस श्लोक के तात्पर्य में श्रील प्रभुपाद लिखते हैं- 'तब भगवान् तथा भक्त के बीच अन्तरंग सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। उस अवस्था में जीव को नष्ट नहीं किया जा सकता है और न भगवान् भक्त की दृष्टि से ओङ्गल होते हैं। श्रीकृष्ण में तादात्म्य होना आध्यात्मिक

बस! श्रीकृष्ण को दृष्टि से ओङ्गल मत कियिए। यही जीवन की सिद्धि है। हम अन्य सारी चीजें भूल जायें किन्तु हमें चाहिये कि श्रीकृष्ण को न भूलें। यदि हम श्रीकृष्ण का स्मरण रख सकें तो हम सबसे धनी व्यक्ति हैं, भले ही लोग हमें सबसे निर्धन क्यों न समझें। यद्यपि रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी विद्वान् थे और अत्यन्त ऐश्वर्यवान् मन्त्री थे, किन्तु उन्होंने श्रीकृष्ण की यादों में संन्यासियों का जीवन बिताया। उन्होंने अपने राजसी ठाठ को तुच्छ मान कर उतार फेंका। उन्होंने लंगोटी स्वीकार की, किन्तु श्रीकृष्ण के लिये वे भावमय सागर में सदैव निमग्न रहते थे। सामान्यतया यदि कोई व्यक्ति उच्च स्तरीय जीवन बिताने का अभ्यस्त रहता है तो वह तुरन्त अपने स्तर को नीचे नहीं गिरा सकता। यदि धनी व्यक्ति ऐसी निर्धन अवस्था में आ जाये तो वह जीवित नहीं रह सकता है। इस बात से

पता चलता है कि श्रीकृष्ण की प्राप्ति ही सबसे बड़ी सम्पत्ति है, जिस सम्पत्ति को इन गोस्वामियों ने प्राप्त किया।'

**3. और वह भी मुझ से दूर नहीं होता है**  
श्लोक के अन्तिम शब्द हैं-सः च मे न प्रणश्यति। अर्थात् वह भी मुझसे दूर नहीं होता है। भागवत (2.8.6) में परीक्षित महाराज श्रील शुकदेव गोस्वामी से कहते हैं कि हे मुने! भगवान् का शुद्ध भक्त, जिसका हृदय एक बार भक्तिमय सेवा के द्वारा स्वच्छ हो चुका है, वह श्रीकृष्ण के चरणकमलों का परित्याग कभी भी नहीं करता, क्योंकि उसे श्रीकृष्ण वैसी ही परम तुष्टि देते हैं, जैसी कि कष्टकारी यात्रा के बाद पथिक को अपने घर में प्राप्त होती है। उक्त श्लोक के तात्पर्य में श्रील प्रभुपाद लिखते हैं- ‘...पूर्णतः शुद्ध हृदय वाला व्यक्ति श्रीकृष्ण की भक्ति कभी नहीं छोड़ता।... कभी-

कभी उपदेश कार्य में लगे हुये भक्त को अनेक तथाकथित कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जगाइ तथा माधाइ नामक दो पतितों का उद्धार करते समय नित्यानन्द प्रभु के साथ ऐसा ही हुआ। इसी प्रकार अविश्वासियों के द्वारा ईसा मसीह को क्रूस पर चढ़ा दिया गया। किन्तु उपदेशक भक्त ऐसे कष्टों को, जो ऊपर से बहुत घोर दिखते हैं, सहर्ष सहन कर लेते हैं, क्योंकि ऐसे कार्यों से श्रीकृष्ण प्रसन्न हो जाते हैं, अतः भक्तों को दिव्य आनन्द प्राप्त होता है। यद्यपि प्रह्लाद महाराज को घोर यातनायें सहनी पड़ीं, तो भी उन्होंने श्रीकृष्ण के चरणकमलों को कभी विस्मृत नहीं किया। इसका एकमात्र कारण यह है कि श्रीकृष्ण के शुद्ध भक्त का हृदय इतना पवित्र होता है कि वह किसी भी स्थिति में श्रीकृष्ण की शरण का परित्याग नहीं कर सकता।...’ तो यहाँ पर श्रीकृष्ण कह रहे हैं कि उनका भक्त उनसे कभी भी दूर नहीं होता है।

इस श्लोक के बंगाली पद्यानुवाद में श्रील प्रभुपाद लिखते हैं-

से देखे आमारे सब स्थावर जमे।

अन्य दृष्टि नाहि तार निर्गुण समे॥

से हय आमारे प्रेमी आमि हई तार।

नीरस शुष्केर तर्क नहे व्यवहार॥

तो यहाँ पर श्रीकृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं- से देखे आमारे सब स्थावर जमे। अर्थात् हे अर्जुन् भक्त समस्त स्थावर तथा जम में मेरा ही दर्शन करता है, परन्तु वही मैं तुम्हारे समक्ष साक्षात् उपस्थित हूँ। अतः तुम मेरी आज्ञा के अनुसार युद्ध करो।

हे कृष्ण!

हे कृष्ण हे कृष्ण  
कृष्ण कृष्ण हे हे।  
हे राम हे राम  
राम राम हे हे॥

## वैष्णव दिनदर्शिका

1 मई से 10 जून 2022 तक

### मई 2022

मंगलवार 3, अक्षय तृतीया, 21 दिनों तक चलने वाली चंदन यात्रा आरम्भ। शुक्रवार 6, श्रीपाद शंकराचार्य आविर्भाव। रविवार 8, जाह्नु सप्तमी।

मंगलवार 10, श्रीमती सीतादेवी आविर्भाव, श्रील मधु पण्डित तिरोभाव, श्रीमती जाह्नवा देवी आविर्भाव।

गुरुवार 12, मोहिनी महाद्वादशी

शुक्रवार 13, पारण समय 5:32-10:02, रुक्मिणी द्वादशी (श्रीमती रुक्मिणी देवी आविर्भाव।)

शनिवार 14, जलदान समाप्त, श्रीजयानन्द प्रभु तिरोभाव।

रविवार 15, भगवान् नृसिंह देव आविर्भाव

(संध्या तक उपवास)।

सोमवार 16, श्रीकृष्ण झूलन और जलक्रीड़ा आरम्भ, श्रील परमेश्वरीदास ठाकुर तिरोभाव, श्रीराधारमण देवजी प्राकट्य, श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी आविर्भाव, श्रील श्रीनिवास आचार्य आविर्भाव।

शुक्रवार 20, श्रील रामानन्द राय तिरोभाव।

गुरुवार 26, अपरा महाद्वादशी।

शुक्रवार 27, पारण समय 5:25-10:01, श्रील वृन्दावनदास ठाकुर आविर्भाव।

### जून 2022

शुक्रवार 10, श्रील बलदेव विद्याभूषण तिरोभाव, श्रीगंगा पूजा, श्रीमती गंगामाता गोस्वामिनी आविर्भाव।

उपर्युक्त दिनदर्शिका नई दिल्ली के पंचांग अनुसार है,  
अपने क्षेत्र की तिथियों के लिए निकटतम इस्कॉन मंदिर से सम्पर्क करें।

# सर्वकारण कारणम्

वर्षों पूर्व जब मैं इस्कॉन से जुड़ा, मैंने अपने भाई से पूछा, “श्रीकृष्ण कहाँ से आये? उनका भी तो कोई स्रोत होगा?” उन्होंने उत्तर दिया, “चूँकि हम इस संसार में देखते हैं कि प्रत्येक वस्तु का कोई स्रोत है, हम उसी धारणा को भगवान् के ऊपर भी थोपने का प्रयास करते हैं। किन्तु भगवान् का कोई स्रोत नहीं है।”

आरम्भ में यह विचार हजाम नहीं होता। यही लगता है कि अरबों-खरबों-खरबों वर्ष पूर्व कभी तो भगवान् भी आये होंगे, और यदि ऐसा है तो उनसे पहले कौन था?

ब्रह्माजी ब्रह्मसंहिता के पाँचवे अध्याय के पहले ही श्लोक में स्पष्ट करते हैं -

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।

अनादिरादिगोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥

श्रीगोविन्द के नाम से विख्यात् श्रीकृष्ण ही परम भगवान् हैं। उनकी देह सत् (शाश्वतता), चित् (ज्ञान) और आनन्द से परिपूर्ण हैं। वे प्रत्येक वस्तु के स्रोत हैं और स्वयं उनका कोई स्रोत नहीं है। वे समस्त कारणों के परम कारण हैं।

यह श्लोक स्पष्ट करता है कि श्रीकृष्ण का कोई स्रोत नहीं है और वे समस्त वस्तुओं के स्रोत हैं। और ब्रह्माजी यह भी कह देते हैं कि यदि हम खोजबीन करके पता चल जाये कि अमुक वस्तु श्रीकृष्ण का स्रोत है, तो अन्ततः आप पायेंगे कि उस वस्तु का स्रोत भी श्रीकृष्ण ही हैं। कैसे? कई बार लोग कहते हैं कि ‘अरे श्रीकृष्ण का भी तो जन्म हुआ है। देवकी और वसुदेव उनके माता-पिता हैं।’ किन्तु ब्रह्माजी के कथनानुसार, भले ही बाह्य रूप से हमें दिखायी दे कि देवकी-वसुदेव श्रीकृष्ण के स्रोत हैं, किन्तु वास्तव में श्रीकृष्ण उनके स्रोत हैं।

श्रीमद्भागवत के दशम् स्कन्ध के तीसरे अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म होने के बाद देवकी तथा वसुदेव द्वारा उनकी की गयी प्रार्थनाओं से यह विषय स्पष्ट हो जाता है। देवकी प्रार्थना करती है -

हे भगवन्, वेद अनेक हैं। उनमें से कुछ वेद आपको शब्दों एवं मन द्वारा अव्यक्त बतलाते हैं, तथापि आप सम्पूर्ण विश्व के उद्गम हैं। आप ब्रह्म हैं, सभी वस्तुओं में श्रेष्ठ हैं और सूर्य के समान तेजस्वी हैं। आपका कोई भौतिक कारण नहीं है, आप परिवर्तन एवं विचलन से मुक्त हैं। आपकी कोई भौतिक इच्छाएँ नहीं हैं। इस प्रकार वेदों का कथन है कि आप ही सार हैं। अतः हे प्रभु, आप समस्त वैदिक कथनों के उद्गम हैं और आपको समझकर मनुष्य अन्य सभी विषयों को धीरे-धीरे समझने लगता है। आप ब्रह्मज्योति तथा परमात्मा से भिन्न हैं, फिर भी आप उनसे भिन्न नहीं हैं। आपसे ही सब वस्तुएँ उद्भूत होती हैं। वस्तुतः आप

ही सभी कारणों के कारण हैं, आप समस्त दिव्य ज्ञान की ज्योति भगवान् विष्णु हैं (श्रीमद्भागवत १०.३.२६)

कुछ लोग श्रीकृष्ण को केवल भारत अथवा हिन्दुओं का भगवान् मानने की भूल कर बैठते हैं। जब एक पत्रकार ने श्रील प्रभुपाद के सम्मुख यह मुद्दा उठाया, प्रभुपाद ने अत्यन्त सरल उत्तर दिया। उन्होंने कहा कि यदि सूर्य पूर्व दिशा से उदित होता है, तो इसका अर्थ यह नहीं है कि पूर्व दिशा सूर्य की जननी हो गयी। सूर्य तो समग्र विश्व का है। इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण विभिन्न देश, काल तथा परिस्थितियों में विभिन्न रूपों में प्रकट होते हैं, किन्तु उनके अतिरिक्त अन्य कोई इस सृष्टि का स्वामी नहीं है। इसलिए श्रीकृष्ण को असमोर्ध्व भी कहा जाता है, अर्थात् न कोई उनके समान है और न कोई उनसे श्रेष्ठ।

वैदिक शास्त्रों में ऐसे अनेक प्रसंग हैं जिनमें विभिन्न देवतागण, जैसे ब्रह्माजी, शिवजी, इन्द्र, वरुण, और यहाँ तककि भगवान् विष्णु भी श्रीकृष्ण को ‘सर्वकारण कारणम्’ स्वीकार करते हैं। किन्तु हमें एक भी ऐसा प्रसंग नहीं मिलेगा जिसमें किसी ने इन देवताओं को भगवान् श्रीकृष्ण से श्रेष्ठ कहा हो। शास्त्रों में ऐसी अनेक कथाएँ हैं जिनमें प्रायः सभी देवताओं को भौतिक प्रकृति के निम्न गुणों के अधीन होकर लज्जित होना पड़ा, किन्तु ऐसा एक भी प्रसंग नहीं है जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण भौतिक प्रकृति के अधीन हुए हों। जब श्रीकृष्ण की शरण लेना बाला व्यक्ति भौतिक प्रकृति से बंधन से मुक्त हो सकता है, फिर यह कैसे सम्भव है कि श्रीकृष्ण उस भौतिक प्रकृति के अधीन होंगे?

वस्तुतः हमें न भौतिक एवं आध्यात्मिक जगतों की विशालता का कोई अनुमान नहीं है। कई बार आकाश की ओर देखकर मैं विचार करता था कि इसका अन्त कहाँ होगा? किन्तु यह प्रायः अन्तहीन है। फिर कल्पना कीजिए कि श्रीकृष्ण कितने महान् होंगे। वे केवल हमारे राज्य के मुख्यमंत्री अथवा देश के प्रधानमंत्री नहीं हैं, वे अखिलकोटिब्रह्माण्डनायक हैं।

खैर, १९७४ में जुहू तट पर प्रातःकालीन सैर करते हुए एक भक्त ने उनसे पूछा, “हम कहते हैं कि श्रीकृष्ण समस्त कारणों के कारण हैं, किन्तु कुछ लोगों का प्रश्न है कि ‘फिर श्रीकृष्ण का स्रोत कौन है?’ हम इसका उत्तर कैसे दें?”

प्रभुपाद ने सटीक उत्तर दिया, “जहाँ तक हमारी जानकारी है, श्रीकृष्ण प्रथम कारण हैं। आप अनुसंधान करें, खोज करें कि श्रीकृष्ण का स्रोत क्या है। यदि आपको वह स्रोत मिल जाता है तो हम भी उसकी पूजा करने लगेंगे। किन्तु जब तक वह नहीं मिलता तब तक आप श्रीकृष्ण की पूजा करो।”

— वंशी विहारी दास



**MANHAR**  
Vrindavan  
Since 1858

**bluecow**  
Vrindavan

Serving Krishna

## Open for **FRANCHISE**

Start your own business

Contact us:

[www.bluecow.co.in](http://www.bluecow.co.in)

+91 9068811231

### Product Categories

Bluecow sells products and services related to preaching, meditation, reading, japas, yagyas and prasadam

- T-shirts - Religious
- Scarfs
- Perfumes and attar
- Bags
- Stationary
- Combo Pooja Pack



Bluecow's moto is to connect everyone to Krishna, and bring Krishna consciousness in our day to day lifestyle.



"In the journey of spreading Krishna consciousness be our  
**'Sakha'**

R.N.I No. 43904/87. Postal Regn. No. MCN/01/2021 - 2023  
Posted at Mumbai Patrika Channel Sorting Office,  
Mumbai 400 001 on 1st & 2nd of every month.  
भगवद्गीता नं २०२२

Date of publication on 27th of  
every previous month.

# अद्वितीय कारीगरी के नमूने

एक संगमरमर में तराशा  
तथा  
दूसरा पश्मीना से निर्मित

पश्मीना  
**शाल**

ये दोनों—ताज एवं पश्मीना। सदियों से ये दोनों  
समय के थपेड़ों से अछूते रहे हैं।

असल में पश्मीना ताज से भी काफी पुरानी कृति है।  
समयानुसार शाल की बनावट और प्रयोग में भी  
परिवर्तन हुआ है। अपने आप में सदियों का  
इतिहास एवं कारीगरों की कुशलता को समेटे  
शाले सुल्तानों, मुगलों, शाहंशाहों,  
काउंटस एवं लाडर्स के साथ-साथ  
आज के शौकीनों की भी  
पहली पसन्द है।

**आहुजासंस**

शाल वाले (प्रा०) लि०

करोल बाग • साऊथ एक्स.-II

6/44, अजमल खाँ रोड, करोल बाग, नई दिल्ली -110 005 फोन : 42499011-012  
E-20, साऊथ एक्स.- II, मेन मार्केट, नई दिल्ली -110 049, फोन : 41345200-201-203  
थोक : 42499015-16, निर्यात : 42499018-19 फैक्स : 42499099 ई-मेल : info@ahujsasons.com